तरुण-भारत-ग्रन्थावली

प्राणायाम-रहस्य

अथवा

(स्वास्थ्य और प्राणायाम

लेखक

श्री स्वामी सर्वानन्द सरस्वती

और

श्री पं० रामरत्नाचार्य

प्रकाशक

तरुण-भारत-ग्रन्थावली-कार्यालय

दारागञ्ज, प्रयाग

प्रथम आवृत्ति] सं० १९८९ वि० [मूल्य १।।)

निवेदन

आजकल हमारे देश के लोगों का ध्यान स्वास्थ्य की उन्नति ओर विशेष रूप से है। यह सन्तोष की बात है। इधर कुछ र्षों से योग की क्रियाओं के द्वारा स्वास्थ्य-सम्पादन की चर्चा ज़ोरों से है। हमारे प्राचीन ऋषियों-मुनियों ने प्राकृतिक यों से ही अध्यात्मिक और शारीरिक उन्नति करने के अनेक न ढूँढ़ निकाले थे। उन्हीं में "प्राणायाम" का भी एक य साधन है।

हिन्दी में "प्राणायाम" पर एक-दो छोटी-मोटी पुस्तकें हैं; उन पुस्तकों में इस महत्वपूर्ण विषय पर पूर्ण प्रकाश डाला गया है। वे या तो पश्चिमी ढङ्ग के प्राणायाम हैं; अथवा बिलकुल पूर्वीय ढङ्ग पर। परन्तु इस पुस्तक र्वीय और पश्चिमीय दोनों शैलियों पर "प्राणायाम" विषय र्याप्त विवेचन किया गया है; और दोनों ही ढङ्ग की ायाम-विधियाँ भी दे दी गई हैं।

यहाँ पर पाठकों को यह सूचित कर देना आवश्यक है कि पुस्तक में जितनी प्राणायाम-विधियां दी गई हैं, उन सभी अभ्यास करना आवश्यक नहीं है; किन्तु जिसको जिस से अपनी शारीरिक और आत्मिक उन्नति में सफलता ाई दे, उसको उसी विधि का अभ्यास करना चाहिए। साथ

ही यदि किसी अनुभवी पुरुष के निरीक्षण में इन विधियों
अभ्यास किया जायगा, तो इस मार्ग में निस्संशय बहु
उन्नति होगी।

इस पुस्तक के लिखने में हमको महात्मा नारायण स्वाम
स्वर्गीय डाक्टर केशवदेव शास्त्री, योगी रामाचारक, महार
ग्रन्थकार श्रीयुत पांडुरङ्ग गोपाल वाल, महाजन, हरिभवि
परायण नारायण बुवा घमंडे और कई बङ्गाली तथा गुजरा
लेखकों के ग्रन्थों से भी बहुत सहायता मिली है। अतए
हम इन महात्माओं के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

पुस्तक के विषय को समझाने के लिए इसमें बीस-बाई
चित्रों की भी योजना की गई है। अगले संस्करण में औ
भी कई चित्र देने का विचार है। यदि पाठकों ने इस पुस्त
से यथायोग्य लाभ उठाया, तो हम अपने परिश्रम को सफ
समझेंगे।

लेखक

विषय-सूची

अध्याय | पृ

प्राणायाम की उपयोगिता

प्राणायाम क्या है ?—"प्राणायाम" इस पद में दो शब्द मिले हैं-अर्थात् प्राण + आयाम। प्राण से तात्पर्य लिया जाता है-श्वास, यानी सांस लेना और प्रश्वास यानी सांस छोड़ना। इसी क्रिया के द्वारा शरीर में प्राणशक्ति स्थिर रहती है। इसलिए इन दोनों क्रियाओं को मिलाकर "प्राण" संज्ञा दी गई है। और "आयाम" कहते हैं वश में करने को, अथवा फैलाने को। इसलिए "प्राणायाम" इस सम्पूर्ण पद का अर्थ हुआ-प्राण को वश में करना अथवा उसको फैलाना। अर्थात् श्वास-प्रश्वास को अपने इच्छानुसार वश में करके, उसकी अव्यवस्थित गति का अवरोध करके, उसको फैलाना—अर्थात् उसकी अवधि को बढ़ाना—अर्थात् चाहे जितने काल तक हम प्राण को अपने अन्दर या बाहर रख सकें। इस क्रिया से प्राणशक्ति अपने वश में हो जाती है। इसीलिए योगाभ्यास में "प्राणायाम" का विशेष महत्व है। वास्तव में प्राण एक शक्ति का नाम है, जिसको हम श्वास-प्रश्वास

के द्वारा अपने अन्दर प्राप्त करते हैं। इसको अधिक से अधिक परिमाण में प्राप्त करना प्राणायाम का परिणाम है।

हम चौबीसों घंटे जो स्वाभाविक रूप से सांस लिया करते हैं, उसमें कोई विशेष व्यवस्था का ख़याल नहीं रखते। बहुत बात करते हैं, बहुत परिश्रम करते हैं, बहुत चलते और दौड़ते हैं, बहुत मैथुन करते हैं, मनमाना व्यवहार करते हैं, बहुत खाते हैं; और जो न खाना चाहिये, वह खाते हैं, बहुत सोते हैं, बहुत जागते हैं, बात बात पर बहुत क्रोध करते हैं। इन सब कारणों से हमारे श्वास-प्रश्वास की गति पर अस्वाभाविक प्रभाव पड़ता है। हमारी प्राणशक्ति नष्ट होती है। इसलिए प्राणशक्ति नष्ट न होने पावे, उसको वश में रखकर बराबर उसको अपने अन्दर बढ़ाते ही जावें—इसी के लिए अपने श्वास-प्रश्वास के अनियमितपन को ठीक करना होता है, उसको एक मार्ग पर लाना होता है। योगी लोग इसी के लिए प्राणायाम का अभ्यास करते हैं; और इसी के द्वारा अपने श्वास-प्रश्वास की गति का अवरोध करके प्राणशक्ति को अपने अन्दर धारण करके दीर्घायु होते हैं।

प्राण-शक्ति—प्राण वास्तव में एक ईश्वरीय विश्वशक्ति है, जो जड़चेतन जगत् में समरस भरी हुई है। जीवों का श्वास-प्रश्वास उसका एक बाहरी लक्षणमात्र है। इसी शक्ति के योग से 'डायफ्राम'—उरोदपटल, मध्यपटल—में गति उत्पन्न होती है; और चेतन प्राणियों में श्वास-प्रश्वास की शक्ति आती है। साधारण

लोग श्वास-प्रश्वास को ही प्राण समझते हैं; परन्तु वास्तव में श्वास-प्रश्वास ही प्राण नहीं है; किन्तु शरीर में प्राण होने की यह एक निशानी है। मशीन में जिस प्रकार तेजी से चलनेवाला एक चाक होता है, उसी प्रकार डायफ्राम या उरोदपटल शरीर के अन्दर का तेजी से चलनेवाला एक चाक ही है। शरीर के प्रत्येक भाग को और उसके छोटे से छोटे परमाणुओं तक को, गति देने-वाला और उनको नियमित करनेवाला, एक मुख्य साधन यह डायफ्राम यानी उरोदपटल ही है। प्राण चराचर सृष्टि में एक ऐसी ईश्वरीय शक्ति है कि इसी से सब भास रहा है, और इसी से संसार, चराचर सृष्टि, सभी हुई है। अन्न, पानी, हवा, सूर्य-किरण से प्राणशक्ति हमको मिलती है। विशेष-कर हवा से हम को यह शक्ति मिलती है; और इसीलिए साधारण लोग श्वास और प्रश्वास को ही प्राण समझते हैं। परन्तु जो लोग प्राणायाम के तत्व को जानते हैं उनका कथन है कि अन्न, जल, वायु और सूर्यतेज से विद्युत् की तरह एक शक्ति हमको मिलती है; और इसी से चेतन और अचेतन सब प्राणियों को गति मिलती है। यह ईश्वर की ही हुई शक्ति है और ईश्वर ही की तरह अदृश्य है। जिस प्रकार ईश्वर को हम अनुमान-ज्ञान से जानते हैं, उसी प्रकार प्राणशक्ति को भी [illegible] चुम्बक पत्थर में शक्ति मौजूद है; पर [illegible] दिखलाई देती है। इसी [illegible] में जो प्राण- [illegible] है, वह देह और

आत्मा का संयोग हो जाने से ही श्वास-प्रश्वास के रूप में प्रकट होने लगती है। इस शक्ति के बिना सारा संसार शून्यवत् है. सचराचर सब में प्राणशक्ति, ईश्वर की तरह, घनीभूत व्याप्त है। चर प्राणियों में—जैसे, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग में—श्वास-प्रश्वास के रूप में यह देखी जाती है। वृक्षों में भी प्राण है। ये भी सांस लेते हैं। दिन को आक्सिजन छोड़ते हैं, रात को कारबोनिक एसिड गैस। इसके सिवाय और भी जितने जड़ पदार्थ हैं, वे सांस तो नहीं लेते; पर बनना-बिगड़ना, संघटन और विघटन की क्रिया के द्वारा उनकी भी प्राणशक्ति का परिचय हम को मिलता है। जैसे मनुष्य के शरीर से प्राणरूप सञ्चालिनी शक्ति जब निकल जाती है, तब देह मिट्टी की तरह अचर हो जाता है; पर फिर भी एक प्रकार की प्राणशक्ति उसके अन्दर पंचतत्वों के रूप में मौजूद ही रहती है; क्योंकि वही पञ्चत्व-प्राप्त मुर्दा शरीर सड़-खप करके फिर प्राणियों के अन्दर प्राण-सञ्चार का कारण बनता है। प्राणों का भी प्राण आत्मा है। यह आत्मा पंच प्राणों के साथ अलग हो जाता है, तब शरीर मिट्टी हो जाता है। इस से प्राण की भी सञ्चालिनी शक्ति आत्मा—और आत्मा के अन्दर भी व्यापक परमात्मा—का परिचय योगियों को प्राणायाम के ही द्वारा मिलता है।

प्राणशक्ति का शरीर के अन्दर कार्य—हम श्वास से बराबर वायु को शरीर के भीतर लिया करते हैं। पानी पीते हैं। स्नान करते हैं। तरह तरह के खाद्य पदार्थ खाते हैं। सूर्य का

तेज और प्रकाश दिन को पाते हैं। रात को भी चन्द्र के द्वारा प्रकाश पाते हैं। इन सब चीजों से हमको आवश्यकतानुसार स्वाभाविक ही प्राण मिलता रहता है। परन्तु सब से अधिक हम वायु के ही द्वारा प्राण पाते हैं। स्वच्छ और खुली हवा में प्राणशक्ति बहुत अधिक मात्रा में रहती है; और गन्दी तथा बन्द हवा की अपेक्षा उससे हम प्राण को, बहुत थोड़े प्रयास से, स्वाभाविक रूप से, चूस सकते हैं। यही कारण है कि खुली और स्वच्छ हवा में जाते ही मनुष्य में नवीन जीवन सञ्चार कर जाता है। हम एक प्रकार के उत्साह और स्वाभाविक प्रसन्नता का अनुभव करते हैं।

हम सदैव साँस लेते रहते हैं। उससे मामूली मात्रा में ही हम प्राण प्राप्त करते हैं। किन्तु साफ और खुली हवा में यदि हम, एक खास नियम के साथ, श्वासोच्छ्वास करने का अभ्यास डालें, तो हम प्राणशक्ति को बहुत अधिक तादाद में अपने अन्दर प्राप्त कर सकते हैं।

जिस प्रकार हमारे सिर के अन्दर दिमाग यानी भेजा है, उसी प्रकार हमारी नाभि के पास भी "सूर्यकमल" मणिपूरचक्र नामक एक भेजा है। यह स्थान प्राण सञ्चय करने के लिए एक प्रकार का मुख्य भंडार है। पूर्ण श्वास और प्राणायाम के द्वारा योगी लोग इसी स्थान पर पर्याप्त रूप से प्राण सञ्चय कर लेते हैं; और शरीर में जिस जगह प्राण कम हो जाता है, उस जगह, आवश्यकतानुसार, वे इसी स्थान से प्राणशक्ति भेज

कर आरोग्य और दीर्घायु प्राप्त करते रहते हैं। उपर्युक्त मणिपूर चक्र के प्राणभांडार से ही सम्पूर्ण शरीर को शक्ति मिलती रहती है। यहाँ तक कि सिर में जो भेजा या मस्तिष्क है, वह भी उक्त प्राणभांडार पर ही अवलम्बित रहता है। जिस प्रकार आक्सिजन से मिला हुआ रक्त सारे शरीर में दौड़ता रहता है उसी प्रकार प्राण धमनियों के द्वारा सारे शरीर में सञ्चार करता रहता है। और इसी से शरीर में उत्साह और स्फूर्ति बनी रहती है। हमारे शरीर की प्रत्येक क्रिया से—उठने-बैठने, बोलने-चालने, देखने-सुनने से—रक्त के साथ ही साथ प्राण खपता रहता है। जहाँ बुद्धि में कोई प्रेरणा हुई कि उसका आघात स्नायुओं पर होता है; और उससे स्नायु सिकुड़ते हैं। स्नायुओं का सङ्कोचन होते हुए, और उस प्रेरणा को कार्यरूप में परिणत करते हुए, प्राण की खपत बराबर होती ही रहती है। इस खपत को पूरा करने के लिए ही श्वास-प्रश्वास के द्वारा प्राणशक्ति को शरीर के अन्दर पहुँचाते रहने का प्रकृति ने प्रबन्ध कर रखा है। प्राण का स्वरूप और उसकी चपलता बिजली के प्रवाह से भी अधिक है। इसके बिना छाती की धड़कन, रक्त का संचार, फेफड़ों के द्वारा श्वास-प्रश्वास की क्रिया, बुद्धि की विचारशक्ति, इत्यादि कोई भी कार्य शरीर के अन्दर नहीं हो सकते। इस प्रकार शरीरक्रिया के साथ प्राणशक्ति की खपत और श्वास-प्रश्वास के द्वारा उसकी पूर्ति होते रहने का क्या महत्त्व है, सो सहज ही मालूम हो जायगा।

प्राणिमात्र में जो चेतनशक्ति और जीवनशक्ति दिखाई देती है, वह प्राण की ही करामात है। प्राण ही डायफ्राम यानी "उरोदपटल" को गति देकर फेफड़ों को हिलाता और उनको गति देता है। फेफड़ों की गति से ही हवा भीतर की ओर खींची जाती है। फेफड़ों को गति मिलने से स्नायुओं को गति मिलती है; और स्नायुओं को गति मिलने से ज्ञानतन्तुओं के द्वारा वायु स्नायुओं में प्रविष्ट होती है। स्नायुओं से वायु फेफड़ों में आती है, और एक विशेष रीति से फेफड़ों को हिलाती है। स्नायुओं की यह शक्ति ही शरीर के अन्दर प्राण है; और अभ्यास से इसको अपने वश में करना प्राणायाम है। अर्थात् प्राणवायु की गति का नियमन करना ही प्राणायाम है।

सारांश यह कि प्राणशक्ति सूक्ष्मरूप से हमारे शरीर में रहती है; और इसी शक्ति के आघात से फेफड़ों में गति उत्पन्न होकर श्वासोच्छ्वास उत्पन्न होते हैं। इन श्वास-प्रश्वासों के नियमन करने के अभ्यास को ही प्राणायाम कहते हैं। दूध को जमा कर दही बनाते हैं; और दही को मथने से उसका रूपान्तर मठा होता है। मथना ही रूपान्तर का कारण है। दही मथने के लिए मथानी और एक डोर की आवश्यकता होती है। डोरी एक ही होती है; पर उसको मथानी में लपेटकर उसके दोनों सिरे दोनों ओर अलग अलग लटका देते हैं। इसी प्रकार श्वास-नली को मथानी समझ लीजिए, और श्वास-प्रश्वास उस मथानी में लिपटी हुई डोरी के दोनों सिरे मान लीजिए। श्वास-प्रश्वास के मथन से

ही प्राण का रूपान्तर होता रहता है। बालपन, युवावस्था
बुढ़ापा, तथा इसके बाद देहान्तर, इत्यादि सब प्राण के मथन
ही परिणाम है। इस निरन्तर मथन-क्रिया के द्वारा यदि हम
शीघ्रता-पूर्वक रूपान्तर नहीं चाहते, तो प्राणायाम के द्वारा इ
मथन क्रिया को रुकावट करनी पड़ेगी। यह मथन-क्रिया जो
हम अपने शरीर के साथ नियमित रूप से होते हैं—उसको
अपने वश में करके यथोचित उसका नियमन करें, तो हमारी
आयु और आरोग्य हमारे वश में हो सकता है। भीष्म
पितामह, स्वामी शंकराचार्य, श्रीहनुमानजी, परशुरामजी, और
अन्य अनेक प्राचीन ऋषिमुनि ब्रह्मचर्य-साधन के साथ साथ
प्राणों को वश में रखने से ही चिरंजीवी हुए हैं।

साधा रखा में रखना चाहिए ... शरीर का तना हुआ और सीध में होना चाहिए। छाती, गर्दन और मस्तक एक

(२) प्राणायाम करते समय अग्नि-सेवन से बचना चाहिए। सूर्य की कोमल किरणों से उष्णता प्राप्त करना विशेष हितकारक है।

(३) स्नान सदैव ठंडे जल से करने का अभ्यास डालना चाहिए।

(४) प्राणायाम करते समय यदि लँगोट का उपयोग किया जाय, ...ी विशेष हितकारक होगा; क्योंकि इससे कमर और गुह्य स्थानों ...ी शिरायें बँधी रहेंगी। यह प्राणायाम के लिए अभीष्ट है।

(५) आहार सात्विक होना चाहिए। सुविधानुसार घी, दूध भी थोड़ा-बहुत सेवन जरूर करना चाहिए।

(६) मिताहार, भूख से कुछ कम ही भोजन करना चाहिए, ...से शरीर हलका रहे।

(७) कडू तेल, लाल मिर्च, खटाई, मिठाई, बहुत नमकीन और ...ले के पदार्थों से बचना चाहिए। मादक द्रव्यों का सेवन न ...ा चाहिए।

(८) बहुत परिश्रम कभी न करना चाहिये। ऐसा कोई भी काम न करना चाहिए, जिसमें श्वास-प्रश्वास का परिमाण बढ़े। श्वास की अपेक्षा प्रश्वास की गति अधिक होने से थकावट आती है। शरीर शिथिल होता है। इस लिए इसकी ओर विशेष ध्यान रखना चाहिये। क्योंकि शान्त स्थिति की अपेक्षा मन की चञ्चल अवस्था में श्वास-प्रश्वास की संख्या बढ़ जाती है। बहुत अधिक खा लेने पर भी ऐसा ही होता है। इसी लिए मिथ्या-आहार-विहार से सदैव बचना चाहिए।

(९) प्राणायाम यदि अधिक किया जाय तो उसके बाद कुछ देर तक विश्राम करना बहुत आवश्यक है। तुरन्त ही उठकर भवधन्धे में न लग जाना चाहिए।

(१०) सप्ताह में एक बार शरीर में तेल की मालिश क[र] कुनकुने पानी से स्नान करना चाहिए। इसी प्रकार महीने में [कम] से कम एक बार कड़ी धूप में लँगोट पहनकर मुँह, नाक, [...] पर चौपर्त घड़ी किये हुए कपड़े को डालकर सूर्य-किरण-[स्नान] करना चाहिए, जिससे पसीना निकल जाय।

(११) पूरक, कुम्भक, रेचक करने पर घबड़ाहट न आने पा[वे] अर्थात मुँह खोलकर वायु लेने की इच्छा न हो—इसी हिस[ाब] से प्राणायाम का समय रखना चाहिये। इससे श्वास की अपे[क्षा] प्रश्वास की गति तीव्र न होगी।

(१२) गहरी साँस लेने की आदत डालनी चाहिए; और मुँ[ह] से साँस कभी न लेनी चाहिए। सदैव नाक से ही साँस लेनी चाहि[ए]

(१३) मुँह ढककर किसी ऋतु में भी न सोना चाहिए। शुद्ध वायु श्वास के द्वारा भीतर जाने और अशुद्ध वायु बाहर निकलते रहने के लिए जाड़ों में भी कम से कम सोते समय नाक तो खुली ही रहनी चाहिए।

(१४) भूख और प्यास जब जोर से लगी हो, तब प्राणायाम न करना चाहिए।

(१५) प्रातःकाल, मध्याह्नकाल, सायंकाल और मध्य रात में प्राणायाम करना चाहिये।

(१६) नदी तीर, एकान्त स्थान, तालाब के पास, बाग में, सुगन्धित पुष्प, तुलसी का वृक्ष, बेल का वृक्ष इत्यादि जहाँ पर हों, ऐसे रमणीक स्थान में प्राणायाम करना चाहिए।

(१७) घृत का दीपक, कपूर, अगर, चन्दन, सुगन्धित पुष्प इत्यादि की सुवास जहां छाई हो, ऐसे पूजा-स्थान में प्राणायाम करना चाहिए।

(१८) मन में उत्साह हो, थकावट न मालूम हो, तब प्राणायाम यथेच्छ करना चाहिए; और जब थकावट या अनुत्साह मालूम हो तब स्वल्प प्राणायाम से सन्तोष करना चाहिए।

(१९) अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरभक्ति—ये पांच यम और पांच नियम हैं। अपने जीवन में इनको यथाशक्ति पालन करते हुए प्राणायाम करना चाहिए।

सम्बन्ध की ओर भी विशेष रूप से ध्यान में रखने की आवश्यकता है।

प्राणायाम के अभ्यासी को नियत समय पर दिन में सिर्फ दो ही बार सात्विक भोजन करना चाहिए। खूब भूख लगने पर आधा पेट फल, दूध, दही, सब्ज़ी और अन्य सात्विक आहार ग्रहण करें, शेष आधे पेट में से चौथाई जल के लिए और चौथाई वायु ग्रहण के लिए खाली रखे। भोजन के समय विशेष जल लेने की आवश्यकता नहीं; किन्तु एक घंटे बाद गिलास भर सुन्दर शुद्ध जल ग्रहण करे; और बीच बीच में जब प्यास मालूम हो, तभी जल लेवे। सुबह कलेऊ करना, फिर दोपहर के भोजन के बाद तीसरे पहर "जलपान" करना, इत्यादि बार बार का भोजन बहुत ही हानिकारक है। इससे मेदा बिगड़ जाता है; और सच्ची भूख का नाश हो जाता है। दिन भर कुछ खाने को मन चाहता है–जिह्वा अपनी लोलुपता प्रकट करती है, ये सब झूठी भूख के लक्षण हैं। जब इस प्रकार बार बार तबियत चलती रहे, तभी समझ लेना चाहिए कि हमने अनियमित रूप से खा-खाकर अपने मेदे को खराब कर लिया है। ऐसी दशा में प्राणायाम के अभ्यास से भी कोई विशेष लाभ नहीं हो सकता। प्राणायाम को यदि औषधि की भांति भी हम समझ लें, तो भी औषधि के साथ संयम की हमको आवश्यकता रहेगी ही—आहार-विहार में संयम किये बिना तो कोई भी औषधि अपना लाभ नहीं दिखला सकती।

यह तो हमने आहार के विषय में सूक्ष्म सूचना की है। अब हम आहार के साथ "विहार" के विषय में भी थोड़ा सा लिखते हैं—

विहार का मतलब विश्राम और आनन्द है। मनुष्य के शरीर में निद्रा से अधिक विश्राम और आनन्द देनेवाली कोई भी शक्ति भगवान् ने नहीं दी है। इस लिए सोने और जागने के नियम का हमको जरूर पालन करना चाहिए। हमको न तो बहुत ज्यादा जगना चाहिए; और न बहुत ज्यादा सोना चाहिए। सोने के लिए भगवान ने हमको रात ही बनाई है—दिन नहीं। रात में भी सिर्फ बीच के दो पहर—अर्थात् ९ बजे से ३ बजे सुबह तक—सोने का स्वाभाविक नियम है। तीन बजे पहली बार "अरुण-शिखा" मुर्गा बोलकर मनुष्य को जगाता है और जब मनुष्य नहीं उठता है, तो चार बजे फिर एक बार अपनी बांग देकर उठाने की कोशिश करता है। इसी बीच में कोयल, पपीहा, जङ्गल में सारस इत्यादि बहुत से उत्तमोत्तम पक्षी बोलने लग जाते हैं। मनुष्य यदि उस समय उठकर नित्य-प्रति भगवान् का ध्यान करे तो उससे अच्छा आनन्द और चौवीसों घंटों में कभी प्राप्त नहीं हो सकता।

परन्तु ९ बजे रात को सो जाने के लिए और तीन बजे प्रातःकाल उठने के लिए यह बहुत आवश्यक है कि शाम का भोजन बहुत ही हलका और सात्विक हो—दिन रहते ही कर लिया जाय,—यदि दिन रहते भोजन की सुविधा न हो तो ७-८

सम्बन्ध की ओर भी विशेष रूप से ध्यान में रखने की आवश्यकता है।

प्राणायाम के अभ्यासी को नियत समय पर दिन में सिर्फ दो ही बार सात्विक भोजन करना चाहिए। खूब भूख लगने पर आधा पेट फल, दूध, दही, सब्जी और अन्य सात्विक आहार ग्रहण करे, शेष आधे पेट में से चौथाई जल के लिए और चौथाई वायु ग्रहण के लिए खाली रखे। भोजन के समय विशेष जल लेने की आवश्यकता नहीं; किन्तु एक घंटे बाद गिलास भर सुन्दर शुद्ध जल ग्रहण करे; और बीच बीच में जब प्यास मालूम हो, तभी जल लेवे। सुबह कलेऊ करना, फिर दो के भोजन के बाद तीसरे पहर "जलपान" करना, इत्यादि बार का भोजन बहुत ही हानिकारक है। इससे मेदा बिगड़ है; और सच्ची भूख का नाश हो जाता है। दिन भर कुछ खाने मन चाहता है-जिह्वा अपनी लोलुपता प्रकट करती है, ये सब मूख के लक्षण हैं। जब इस प्रकार बार बार तबियत चलती तभी समझ लेना चाहिए कि हमने अनियमित रूप से खा-खा अपने मेदे को खराब कर लिया है। ऐसी दशा में प्राणायाम अभ्यास से भी कोई विशेष लाभ नहीं हो सकता। प्राणायाम यदि औषधि की भांति भी हम समझ लें, तो भी औषधि के संयम की हमको आवश्यकता रहेगी ही—आहार-विहार संयम किये बिना तो कोई भी औषधि अपना लाभ नहीं दिखा सकती।

यह तो हमने आहार के विषय में सूक्ष्म सूचना की है
अब हम आहार के साथ "विहार" के विषय में भी थोड़ा स
लिखते हैं—

विहार का मतलब विश्राम और आनन्द है। मनुष्य के शरी
में निद्रा से अधिक विश्राम और आनन्द देनेवाली कोई भी शक्ति
भगवान् ने नहीं दी है। इस लिए सोने और जागने के नियम
का हमको जरूर पालन करना चाहिए। हमको न तो बहुत ज्यादा
जगना चाहिए; और न बहुत ज्यादा सोना चाहिए। सोने के
लिए भगवान ने हमको रात ही बनाई है—दिन नहीं। रात में भी
सिर्फ बीच के दो पहर—अर्थात् ९ बजे से ३ बजे सुबह तक—
सोने का स्वाभाविक नियम है। तीन बजे पहली बार "श्ररुण-
शिखा" मुर्गा बोलकर मनुष्य को जगाता है और जब मनुष्य नहीं
उठता है, तो चार बजे फिर एक बार अपनी बांग देकर उठाने
की कोशिश करता है। इसी बीच में कोयल, पपीहा, जङ्गल में
सारस इत्यादि बहुत से उत्तमोत्तम पक्षी बोलने लग जाते हैं।
मनुष्य यदि उस समय उठकर नित्य-प्रति भगवान् का ध्यान करे
तो उससे अच्छा आनन्द और चौबीसों घंटों में कभी प्राप्त नहीं
हो सकता।

परन्तु ९ बजे रात को सो जाने के लिए और तीन बजे प्रातः-
काल उठने के लिए यह बहुत आवश्यक है कि शाम का भोजन-
बहुत ही हलका और सात्विक हो—दिन रहते ही कर लिया
जाय,—यदि दिन रहते भोजन की सुविधा न हो तो ७-८

बजे रात को सिर्फ थोड़े से फल और दूध मात्र लिया जाय। गरिष्ठ भोजन तो हर हालत में त्याज्य है। रात को पेट हलका रहने से ही मनुष्य को निद्रा का पूरा आनन्द मिल सकता है, अन्यथा अनेक प्रकार के स्वप्नों से विश्रान्ति का भंग होता है।

९ बजे रात से ३ बजे प्रातःकाल तक के समय में—बीच में मनुष्य स्त्री-सहवास करता है। "विहार" शब्द में इसका भी अन्तर्भाव होता है। इसलिए प्राणायाम के अभ्यासी को स्त्री सहवास में भी नियमित होने की जरूरत है। ध्यान में रखना चाहिए कि स्त्री-सहवास की प्रवृत्ति भगवान् ने प्रजोत्पत्ति के लिए दी है। इन्द्रिय-सुख के लिए नहीं। मनुष्य के शरीर में जितनी भी इन्द्रियाँ हैं, वे यों ही चाहे जब मन चले, तभी सुख भोगने के लिए नहीं हैं। यदि मनुष्य ऐसा करने लगे, तो उसका जीवन बिलकुल संकटमय हो जायगा—आत्मा का स्वाभाविक आनन्द नष्ट हो जायगा। हम पहले कह चुके हैं कि मनुष्य का मन जितना ही किसी भी इन्द्रिय-सुख के लिए अधिक चंचल होता है, उतनी ही उसकी कमजोरी प्रकट होती है; और वह सच्चे सुख से वंचित होता जाता है। अपनी स्त्री के साथ भी यदि मनुष्य महीने में एक बार से अधिक सहवास करता है, तो यह उसका व्यभिचार ही है। गर्भ-धारण के बाद स्त्री-सहवास से बिलकुल बचना चाहिए। अन्यथा स्त्री का स्वास्थ्य खराब तो होता ही है—इसके सिवाय गर्भस्थ बालक पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। दूसरी स्त्री को तो माता के समान देखना ही चाहिए।

परन्तु अपनी स्त्री को भी ऋतुकाल के अतिरिक्त माता ही समझना चाहिए* । इस विषय में भगवान् से नित्य प्रार्थना करनी चाहिए; और अपनी पत्नी से भी मदद लेनी चाहिए । मुझे पूर्ण विश्वास है कि हमारे घरों की देवियाँ इस विषय में अपने पति की अवश्य मदद देंगी । क्योंकि हमारी देवियों में काफ़ी संयम मौजूद है। स्त्री को अपनी कामवासना का साधन न समझकर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चारों पुरुषार्थों की जननी समझना चाहिए; और उससे विशुद्ध प्रेम अर्थात् अध्यात्मिक सम्बन्ध जोड़ने का प्रयत्न करना चाहिए† ।

स्त्रीसहवास के अतिरिक्त मित्रों में आनन्दपूर्वक समय बिताना, सृष्टि-सौन्दर्य के निरीक्षण के लिए तीर्थ-यात्राएँ करना, तथा मनोरञ्जन के व्यायाम और खेल खेलना इत्यादि बातें भी विहार ही के अन्तर्गत मानी जा सकती हैं । इन सभी बातों में अपने जीवन का समय नियमित रूप से ही लगाना चाहिए । जीवन का प्रत्येक कर्तव्य नियमित समय पर, नियत और नियत रूप में, करने से ही जीवन-संग्राम में सफलता प्राप्त हो सकती है । अन्यथा नहीं ।

---

*पत्नी, पुत्र के रूप में, पति को जन्म देती है । अतएव, इस दृष्टि से भी, उसको मातृवत् समझ सकते हैं ।

†"ब्रह्मचर्य पर महात्मा गांधी के अनुभव" नामक पुस्तक हमारे [illegible] से मँगाकर पढ़नी चाहिए ।

चौथा अध्याय

प्राणायाम से स्वास्थ्य और आयु की वृद्धि कैसे होती है ?

प्राणायाम का पाचन और उत्सर्जन दोनों शक्तियों से घनिष्ट सम्बन्ध है। अर्थात् प्राणवायु यदि अच्छी तादाद में और ठीक रीति से हमारे शरीर में पहुँचती रहती है, तो वह हमारे आहार को पचाती है, खून में मिलकर उसको शुद्ध करती है; और अपनी तीव्रता से मलों को जलाती है। इतना ही नहीं, बल्कि मल, मूत्र, प्रस्वेद (पसीना) और अपान वायु के द्वारा शरीर के सभी विकारों को यह प्राणवायु ही, अपनी शक्ति से, बाहर निकालती रहती है। प्राणवायु हमारे श्वास से तो अन्दर जाती ही है, इसके सिवाय करोड़ों रोमछिद्रों से भी वह शरीर में पहुँचती है। इसी प्रकार अपानवायु भी बाहर निकलती रहती है—सब से अधिक अपानवायु प्रश्वास के द्वारा हम शरीर के अन्दर से निकालते हैं। शरीर के दोषों की संख्या डाक्टरों ने ५८०० केलोरी मानी है। इसमें से प्रश्वास द्वारा २०००, पसीना द्वारा १६००, मल द्वारा १२०० और मूत्र द्वारा १००० केलोरी के दोषों के निकालने की आवश्यकता होती है। इस प्रकार यदि हमारी उत्सर्जनशक्ति बराबर काम करती रहती है, तो शरीर निर्विकार, मलरहित, शुद्ध अतएव आरोग्य रहता है। भूख अच्छी लगती है; और शारीरिक तथा मानसिक कार्यों में उत्साह उत्पन्न होता है।

उपर्युक्त पाचन और उत्सर्जन शक्तियों में समता रहे—वैषम्य न हो—इसके लिए आवश्यक है कि अधिक से अधिक प्राणवायु हम अपने फेफड़ों में पहुँचावें। यह काम प्राणायाम के द्वारा हो सकता है। यों तो, जैसा कि हम कह चुके हैं, प्रत्येक

मनुष्य जान-अनजान में प्राणायाम किया ही करता है; पर
परमात्मा ने हमको यह शक्ति दी है कि जिससे हम विशेष रूप
प्राणवायु को ग्रहण करके, और ज्ञानपूर्वक श्वास-प्रश्वास की
क्रिया करके, अधिक से अधिक प्राणवायु ग्रहण कर सकते हैं।
प्राणायाम में जब हम प्राणवायु को जोर से और लम्बी धारा में
अन्दर खींचते हैं, तो सम्पूर्ण शरीर में उसका सञ्चार हो जाता
है और उसको नियम से रोकने पर वह मलों को दग्ध करती
और जब हम जोर से वायु का लम्बा प्रवाह बाहर निकालते हैं,
शरीर की खराबियाँ निकल जाती हैं। जैसे जोर से आंधी
पर वायु इधर-उधर की सारी गन्दगी को उड़ा ले जाती है, उ
प्रकार शरीर के प्रत्येक कोठे की खराबी जोर से हवा खींचने औ
छोड़ने से निकल जाती है।

प्राणायाम एक प्रकार से फेफड़ों का व्यायाम है। इस
फेफड़े तो मजबूत बनते ही हैं, इसके सिवाय छाती का विस्ता
भी बढ़ता है। वक्षस्थल की पेशियां लोहे के समान कस जात
हैं; और काफी बोझ उठा सकती हैं। प्रोफेसर राममूर्ति इत्यादि
शक्तिशाली मज्जनों ने, इसी प्राणायाम के बल पर, अस्सी मन
वजनी हाथी को अपने वक्षस्थल पर धारण करने की सफलता
प्राप्त की है। इसके विरुद्ध जो लोग श्वासविज्ञान को नहीं जानते,
वास्तविक रीति से श्वास-प्रश्वास की क्रिया नहीं करते और न
प्राणायाम का ही अभ्यास करते हैं, उनके फेफड़े
कमजोर पड़ जाते हैं। ऐसे स्त्री-पुरुषों के फेफड़ों के सब भाग

ोड़ वायुकोषों में से बहुत थोड़े वायुकोष अपना काम करते हैं।
प वायुकोष बेकार और प्राणवायु से वञ्चित पड़े रहते हैं।
से सूर्यप्रकाश से रहित अँधेरी कोठरी में रोग के जन्तु उत्पन्न
ते और बढ़ते हैं, उसी प्रकार फेफड़ों में, प्राणवायु के ठीक
क न पहुँचने से, क्षय इत्यादि रोगों के जन्तु पैदा हो जाते
ौर बढ़ने लगते हैं। प्राणायाम के अभ्यासी पुरुष, अथवा स्त्री
ा क्षय, निमोनियां, श्वास, इत्यादि फेफड़ों के रोग होने का
लकुल भय नहीं रहता। ऐसा निश्चय किया गया है कि संसार
 प्रत्येक पाँच मौतों में से एक मौत फेफड़े के रोगों से होती है।
सी प्रकार पन्द्रह वर्ष की आयु के ऊपर कुल मृत्युसंख्या में
 एक-तृतीयांश मनुष्य यक्ष्मा यानी क्षय अथवा फेफड़ों के अन्य
ोगों से मरते हैं। मनुष्य दुष्काल से इतने नहीं मरते, जितने
ाणवायु के न मिलने, अथवा उसको ठीक तौर से ग्रहण न कर
कने के कारण मर रहे हैं। इसलिए जो स्त्री और पुरुष प्राणा-
ाम के अभ्यास से प्राणों की गति बढ़ाते हैं, जो गहरे लम्बे
्वास-प्रश्वासों के द्वारा रेचक को सिद्ध करके फेफड़ों से अपान
ायु को निकाल देते हैं, जो शुद्ध प्राणवायुद्वारा फेफड़ों के मैले
[illegible]

होता। उनकी शारीरिक और मानसिक उन्नति स्वाभावि
ही होती रहती है। शरीर की शक्ति और सौन्दर्य बढ़ता है; औ
वे पूर्णायु का पवित्रतापूर्वक भोग करते हैं।

जब शरीर और मन का स्वास्थ्य बढ़ेगा, तब आयु बढ़े
ही—इसमें सन्देह नहीं। तथापि, अब हम यहाँ पर इस बात का
सूक्ष्म विचार करते हैं कि प्राणायाम का, दूसरे तरीक़ों से, हमारी
आयु पर क्या प्रभाव पड़ता है। हिन्दू शास्त्रों का पुराना सिद्धा
है कि प्रत्येक प्राणी अपने अपने कर्मानुसार "जाति आयु
भोग"से बँधा हुआ है। अर्थात् जैसे उसके कर्म हैं, वैसी
उसको 'जाति' अर्थात् जन्म मिलता है, उसी के अनुसार उसव
न्यूनाधिक आयु मिलती है; और कर्मों के अनुसार ही फल य
भोग मिलता है। प्रत्येक प्राणी इन तीनों में बँधा हुआ है।

कर्मफल-भोग के लिए जन्म और आयु की आवश्यकता है।
प्राणी की आयु क्या चीज है? शास्त्र में लिखा हुआ है कि
"प्राणो वै भूतानां आयुः" अर्थात् प्राण ही प्राणियों की आयु है।
इस लिये श्वास-प्रश्वास की गति को रोककर यदि प्राण को
हम अपने अन्दर बढ़ा लेवें, तो हमारी आयु भी बढ़ सकती है।

प्राण के बढ़ाने का यह तरीका ही प्राणायाम है। एव
साधारण मनुष्य एक मिनट में सोलह से अठारह बार तक सांस
लेता है; और इसी सांस की गति के अनुसार हृदय और नाड़ी
की धड़कन भी होती है। यदि हम आवश्यकता से अधिक
बार सांस लेते हैं, तो हृदय की धड़कन और नाड़ी की गति

भी बढ़ जाती है। जैसे, कामातुर अवस्था, भय की अवस्था, अत्यन्त क्रोध की अवस्था, लोभ लालच या स्वार्थ की व्यग्रता, ईर्षा-द्वेषपूर्ण विचारों की अवस्था, इत्यादि दशाओं में हृदय की धड़कन बढ़ती है; और श्वास-प्रश्वास भी स्वाभाविक ही जल्दी जल्दी निकलने लगते हैं। ऐसी अवस्थाओं में चित्त भी अशान्त होता है और हृदय की निर्बलता बढ़ती है। इसलिए आयु भी कम होती है। परन्तु यदि प्राणायाम के अभ्यास से हम श्वास-प्रश्वास की गति को बढ़ा सकें—अर्थात् श्वास के लेने, निकालने और रोकने में अवधि को बढ़ा सकें, तो स्वाभाविक ही हृदय में शान्ति आवेगी; और हमारी आयु बढ़ेगी। कहते हैं कि योगी लोग तो प्राणायाम के अभ्यास से श्वास-प्रश्वास की गति को चाहे जितनी अवधि तक रोककर हृदय की धड़कन और नाड़ी की गति को भी रोके रहते हैं। अर्थात् जहां साधारण लोगों का श्वास-प्रश्वास और हृदय की धड़कन मृत अवस्था में रुकती है, वहां योगी जीवित अवस्था में ही रोककर अपनी आयु की अवधि बढ़ाते रहते हैं। सारांश यह है कि जितनी ही लम्बी और गहरी सांस लेने, छोड़ने और रोकने का अभ्यास हम को होगा, उतनी ही देर देर में हमारा श्वास-प्रश्वास निकलेगा; और उतनी ही हमारी आयु की मर्यादा बढ़ेगी। यही प्राणों का निरोध, प्राणों की गति-वृद्धि का कारण होता है। एक मिनट में हम जितनी ही कम संख्या में श्वास लेंगे, उतनी ही हमारी आयु बढ़ेगी और उस संख्या में जितनी ज्यादती होगी, उतनी ही

आयु क्षीण होगी। वैज्ञानिकों ने भिन्न भिन्न प्राणियों की एक मिनट की श्वास-संख्या, और उनकी आयु की मर्यादा, निश्चित की है। नीचे दिए हुए कोष्ठक से इस विषय का खुलासा हो जायगा।

प्राणी	श्वास-संख्या प्रतिमिनट	आयु
शशक	३८	८ वर्ष
कबूतर	३६	८ "
वानर	३२	२१ "
कुत्ता	२९	१४ "
बकरा	२४	१३ "
बिलार	२५	१३ "
घोड़ा	१९	४० "
मनुष्य	१३	१०० "
हाथी	१२	१०० "
सर्प	८	१२० "
कछुवा	५	१५० "

यह श्वास-संख्या स्वस्थ प्राणियों की है। रोगी, शोकी, क्रोधी, कामी, डरपोंक, स्वार्थी और दुर्व्यसनी प्राणियों की श्वास-संख्या का कोई प्रमाण नहीं है। इसीसे उनकी आयु का भी कोई प्रमाण निश्चित नहीं हो सकता है। श्वास ही के आश्रय से प्राणियों का जीवन है; और उसका निरोध करके आयु को दूना, तिगु और चौगुना तक बढ़ा सकते हैं। जितनी ही लम्बी, गह और कम संख्या में सांस लेने का हम अभ्यास करेंगे, उत ही अधिक दिन तक हम जीवित रह सकते हैं। ऊपर जो सूचं

दी गई है, उसमें सर्प और कछुवा को देखिये। सर्प अधिकांश में वायु के ही आश्रय पर रहता है। वायु-भक्षक तो उसका नाम ही है। वह श्वास बहुत ही कम लेता है; और अपने फुसकार के रूप में बड़ा लम्बा रेचक करता है। इसी प्रकार कछुवा को जिन लोगों ने जल के ऊपर नासिका निकालकर लम्बा पूरक करते देखा होगा, उनको सहज ही मालूम हो जायगा कि उसकी आयु क्यों अधिक होती है। इन प्राणियों के फेफड़े ही भगवान ने इस तरह के बना दिये हैं कि ये काफी लम्बा रेचक और पूरक कर सकते हैं; और कुम्भक भी इन का बहुत लम्बा होता है। रेचक, पूरक और कुम्भक के लम्बे होने से श्वास-प्रश्वास की संख्या आपही आप घट जाती है; और वायु का आहार भी बहुत अच्छा होता है। क्योंकि प्राणियों के लिए मुख्य आहार वायु का ही भगवान ने बनाया है। हमारे प्राचीन ऋषिमुनि "वाताम्बुपर्णाहारी"—अधिकांश में प्राणायाम के द्वारा विशुद्ध वायु का ही आहार किया करते थे; और इसी लिए वे दीर्घायु तथा अनुपम शक्तिशाली होते थे। उनका शरीर तपाये हुए सोने की तरह होता था; और अपनी अध्यात्मिक शक्तियों से वे अलौकिक चमत्कारपूर्ण अनेक पुरुषार्थ कर दिखलाते थे।

अब से पांच हजार वर्ष पूर्व, महाभारत के समय तक, हमारे देश में प्राणायाम और योग का बहुत काफी प्रचार था। महायोगेश्वर श्रीकृष्ण, राजर्षि भीष्मपितामह, महामुनि व्यास, बालब्रह्मचारी शुकदेव, धर्मराज युधिष्ठिर, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य,

अश्वत्थामा, यहाँ तक कि भीम और दुर्योधन तक के प्राणायाम के उल्लेख महाभारत में मिलते हैं, जो कई दिन तक जल के अन्दर कुम्भक किये हुए पड़े रहते थे। संध्या के साथ प्रत्येक गृहस्थ दिन में दो-दो, तीन-तीन बार काफी प्राणायाम कर ि करता था, जिससे भारतवर्ष की आयुमर्यादा बहुत बढ़ी हुई थ मृत्यु तो उनके सामने कोई चीज ही नहीं थी। जब चाहते खुशी से मर जाते थे; और यदि उनकी इच्छा होती थी, प्राणायाम के द्वारा मृत्यु को भी रोके रहते थे। दोनों दशाओं अपनी कृतार्थता का अनुभव करते थे। जब वे समझ लेते कि इस लोक का हमारा कर्तव्य अब पूर्ण हो गया—हमारा कर्मफलभोग खतम होगया—तब वे स्वयं भगवान् का ध्यान करते हुए योगाभ्यास के द्वारा, इस प्रकार चोला बदल डालते थे, जैसे हम लोग एक कपड़े को उतार कर धर देते हैं; और दूसरा पहन लेते हैं। एक शरीर से दूसरे शरीर में परिवर्तन के सिवाय मृत्यु उनकी दृष्टि में और कोई चीज नहीं थी। परन्तु हम आज-कल मृत्यु को एक बहुत बड़ा हौवा समझते हैं। इसका यही कारण है हम प्राणायाम और योगसाधन के समान मृत्युविजय करानेवा साधनों का अभ्यास नहीं करते। इसी से हमारा हृदय दुर्ब रहता है; और तमाम लोगों को अल्पायु में मरते हुए देखक हम स्वयं भी मृत्यु के भय से कांपते रहते हैं। इस लिए भाइयो मृत्यु के भय को छोड़ो और यथाशक्ति प्राणायाम का अभ्यास करके आरोग्य और दीर्घायु बनो।

पांचवां अध्याय

श्वास-प्रश्वास की इन्द्रियां और उनके कार्य

नासिका--नासिका को घ्राणेन्द्रिय भी कहते हैं। इसी के द्वारा हमको सुगन्ध और दुर्गन्ध का ज्ञान होता है; और इसी के द्वारा हम शुद्ध वायु अन्दर लेते हैं; और भीतर की अशुद्ध जह रीली हवा हम बाहर फेंकते हैं। गन्ध पहचानने की शक्ति इस इन्द्रिय में भगवान् ने इसीलिए दी है, कि जिससे शुद्ध वा नासिका के द्वारा हम पीते रहें; और अशुद्ध दुर्गन्धित वायु से बचे रहें।

नाक के अन्दर बीचों बीच मुलायम हड्डी का एक पड़द रहता है, जिससे उसके दो भाग हो जाते हैं। इन दोनों भागों के नासापुट कहते हैं। नासापुटों के अन्दर रोम हैं। हमारी साँ के साथ जो बारीक गर्दगुबार या जहरीले सूक्ष्म जन्तु (जर्म्स नाक में पहुँच जाते हैं, वे सब इन्हीं रोमों में अटक जाते हैं इसके बाद भीतर जो चिपचिपा पड़दा रहता है, उसमें श्वास की वायु छनती और गरम होती है; क्योंकि उस जग गरम रक्त विशेष मात्रा में रहता है। इस प्रकार वायु को अपन गन्ध-शक्ति के द्वारा परखकर, फिर उसको छानकर और फि गरम करके हमारी नासिका, श्वास-नलिका के द्वारा, उसके

फफड़ों में पहुँचाती है । मुख के द्वारा भी श्वास फेफड़ों में पहुँच जाती है; परन्तु वायु के उपर्युक्त शुद्धीकरण का कोई भी प्रबन्ध मुख में नहीं है । इसीलिए मुख के द्वारा श्वास-प्रश्वास का निषेध किया गया है । इसके सिवाय, यदि हम मुख के द्वारा श्वास लेवें; और प्रश्वास छोड़ें, तो दोनों की गन्दगी हमारे मुँह में ही रह जायगी, जो लार घुटकने के साथ फिर हमारे अन्दर पहुँचती रहेगी । इसीलिए मुँह खोलकर चलने-फिरने और सोने वाले लोगों की जिन्दगी बहुत कम हो जाती है । नाक और मुँह से सांस लेने में क्या भेद है, इसका विचार इस पुस्तक में अलग ही एक अध्याय में किया गया है । अतएव यहाँ विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं है ।

मस्तिष्क—मस्तिष्क के ज्ञानतन्तुओं का सीधा सम्बन्ध घ्राणेन्द्रिय से भी है, यह सभी जानते हैं । घ्राणेन्द्रिय में जब वायु का प्रवेश होता है, तब उसकी विशुद्धता का अनुभव मस्तिष्क ही करता है । कौनसी वायु हमारे फेफड़ों के लिए लाभकारी है; और कौन सी हानिकारी है, इसकी परीक्षा मस्तिष्क के ज्ञान-तन्तुओं के ही द्वारा नासिका को मिलती है । अतएव मस्तिष्क की भी गणना श्वास-प्रश्वास की इन्द्रियों में की गई है । इसका एक और भी प्रमाण है । देखिये, जब मनुष्य गम्भीर विचार में [illegible] उसके श्वास-प्रश्वास भी गम्भीर हो जाते [illegible] आपने गहरी सांस लेने लगता है । इसी [illegible] में जब व्यग्रता पैदा होती है, तब सांस

भी व्यम, अर्थात् शीघ्रगामी हो जाती है। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, मात्सर्य, इत्यादि मनोविकार जब हमारे मस्तिष्क
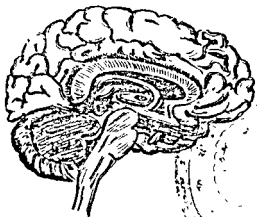
चित्र नं० १—मस्तिष्क

पर आक्रमण करके उसको कम्पायमान कर देते हैं, तब श्वास-प्रश्वास की गति भी कम्पित हो जाती है। मस्तिष्क और मन जब शान्त होता है, तब प्राण भी शान्तिमय गति को धारण करते हैं। इससे मस्तिष्क और श्वास-प्रश्वास का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है।

श्वास-प्रश्वास की मुख्य इन्द्रियां दो हैं। फेफड़े और हृदय। इन दोनों से भी मस्तिष्क का बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है। शारीरशास्त्र के ज्ञाताओं ने मस्तिष्क में बारह तन्तु बतलाये हैं। उनमें से

"न्यूमोगैस्ट्रक" नामक दूसरे तन्तु के द्वारा, मस्तिष्क के पिछले भाग से, जिस शक्ति का प्रवाह होता है, उसीमें हमारे फेफड़े गतिमान होते हैं। मस्तिष्क और फेफड़ों का इतना निकट-सम्बन्ध है कि एक दूसरे पर सर्वथा निर्भर हैं। मननशक्ति की गति फेफड़ों की गति के अनुसार और फेफड़ों का संचालन हृदय की गति के अनुसार होता है।

अब हृदय से मस्तिष्क का सम्बन्ध देखिये। सम्पूर्ण शरीर का रक्त अशुद्ध होकर हृदय-मन्दिर में आता है; और फिर श्वास-प्रश्वास से शुद्ध होने के लिए वही फेफड़ों में आता है; और शुद्ध होकर फिर हृदय कुंड में जाता है। वहां से फिर वह समस्त शरीर में दौड़ता है। यह क्रिया अनवरत रूप से होती रहती है। इसमें भी मस्तिष्क का बड़ा भारी भाग है। मस्तिष्क का वजन सम्पूर्ण शरीर का चालीसवां भाग बतलाया जाता है; परन्तु हृदय-मन्दिर से जो विशुद्ध रक्त सारे शरीर में जाता है, उसका सातवां हिस्सा केवल मस्तिष्क ही ले लेता है। इस प्रकार जब मस्तिष्क में आनेवाली रक्त की धारा निरन्तर एक रूप, अबाधित गति से प्रवाहित होती रहती है, तब हमारी मानसिक शक्तियां भी ठीक ठीक काम करती हैं। जहां मानसिक शक्तियों में विकार हुआ, समझ लो कि हृदय और फेफड़ों में भी अवश्य विकार पैदा हो गया है। इसी कारण योगी लोग मस्तिष्क, हृदय और फेफड़ों की गति को सम अवस्था में रखते हैं। अष्टांग-योग में यम और नियमों का पालन इसी कारण बहुत आवश्यक बतलाया गया है।

फेफड़े–यही श्वास-प्रश्वास की मुख्य इन्द्रियां हैं। रक्तशुद्धि इन्हीं में होती है। फेफड़ों का रंग कुछ कालापन लिये हुए लाल होता है। इनकी बनावट स्पंज की तरह छिद्रित होती है। दोनों ओर दो फेफड़े करीब करीब छाती भर में फैले हुए हैं। सामने से पसलियों और पीछे से पृष्ठमेरु के एक दृढ़ पिंजर में इनका
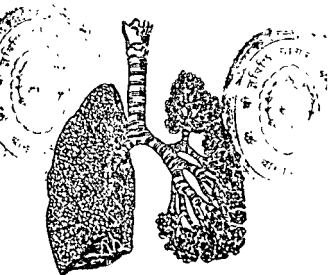
चित्र नं० १—फेफड़े।

निवासस्थान है। दाहना फेफड़ा बायें फेफड़े से बड़ा है। दाहने के तीन भाग और बायें के दो भाग हैं। इन पांचों भागों में जब रक्त

पहुँचता है, तब जैसे पानी से स्पंज भर जाता है, वैसे ही रक्त
फेफड़े भर जाते हैं। सारे फेफड़ों में रक्त की शिराएं और वा
के कोष (cells) हैं। इन वायु-कोषों की गणना कुल लग
भग सात करोड़ बीस लाख तक बतलाई जाती है। साधारण
अवस्था में लगभग दो करोड़ वायुकोषों में प्राणवायु पहुँचती
है। बाकी लगभग पांच करोड़ वायुकोष भगवान् ने इस लिए
बनाये हैं कि समय समय पर हम उनमें अधिक प्राणवायु ग्रहण
कर सकें। यह विशेष प्राणवायु हम व्यायाम से ही प्राप्त कर
सकते हैं। सरपट चलने, दौड़ने इत्यादि से हम काफी वायु अपने
वायुकोषों में पहुँचा सकते हैं। प्राणायाम के द्वारा जब हम वायु
अन्दर भरते हैं, तब हमारे अधिकांश कोष कार्यक्षम हो जाते हैं।
ज्योंही फेफड़ों में प्राणवायु का प्रवेश होता है, वह बड़े बड़े मार्गों
से दौड़ती हुई छोटे से छोटे वायुकोषों में भर जाती है। इन वायु-
कोषों से मिली हुई असंख्य छोटी छोटी रक्तनलिकाएं हैं, जिनमें
अशुद्ध रक्त बराबर हृदय से आता हुआ बहता रहता है। इन
रक्तनलिकाओं और वायुकोषों के बीच में बारीक झिल्लीदार त्वचा
का पड़दा रहता है, जिससे हवा बराबर इधर-उधर आती जाती
रहती है। अशुद्ध रक्त, जो उक्त नलियों में बहता रहता है, उसमें
कारबोनिक एसिड गैस, यानी विकारी हवा रहती है। इस हवा
में ज्योंही वायुकोषों में भरी हुई प्राणवायु का सम्मिश्रण हुआ,
त्योंही प्राणवायु का आक्सिजन तो रक्त में मिलकर उसको विशुद्ध
लाल रंग का बना देता है; और उसकी कारबोनिक एसिड गैस को

ग्रहण करके बाहर प्रश्वास के साथ फेंक देता है। यह क्रिया फेफड़ों में प्रत्येक श्वास-प्रश्वास के साथ जारी रहती है। यदि हम पर्याप्तरूप से प्राणवायु अपने अन्दर न भरें, तो हृदय से फेफड़ों में आनेवाला यह अशुद्ध रक्त वैसा ही फिर हृदय में लौट जायगा; और सारे शरीर में दौड़ता हुआ उसको रोगी बनायेगा। इससे पाठकों को मालूम हो जायगा कि ताजी शुद्ध हवा हमको व्यायाम और प्राणायाम के द्वारा विशेष रूप से मिलने की कितनी आवश्यकता है।

हृदय-शरीर का बहुत ही महत्वपूर्ण अंग है। यह रक्त शुद्ध करने का एक ऐसा यंत्र है, जिसका सारे शरीर से सम्बन्ध है। समस्त शरीर से अति सूक्ष्म नलियां अशुद्ध रक्त बहाकर हृदय-मन्दिर में लाती हैं, जिनको शिरा कहते हैं। इसी प्रकार अन्य नलियां, जो शुद्ध हुए रक्त को सम्पूर्ण शरीर में हृदय से बहाती रहती हैं, उनको धमनी कहते हैं। हृदय हमारे वक्षस्थल से नीचे की ओर, बाईं तरफ, त्रिकोणाकार है। इसकी आकृति क़रीब क़रीब हमारी बन्द मुट्ठी की तरह है। इसका निचला भाग कुछ तंग और ऊपर का भाग चौड़ा है। ऊपर जो चौड़ा भाग है, उसका सिरा नीचे की ओर को बाईं तरफ को कुछ मुड़ा हुआ सा है। हृदय, शरीर के अन्दर, रक्त का मुख्य हेड-आफिस है। अशुद्ध रक्त शुद्ध होने के लिए, और शुद्ध रक्त सारे शरीर को पोषित करने के लिए, यहीं से—इसी हेड आफिस से—भेजा जाता है। इसके दो भाग हैं। एक दाहना और दूसरा बायां। जो रक्त फेफड़ों से शुद्ध होकर आता है, वह हृदय के बायें भाग में जमा होता है; और जो

विकृत रक्त सारे शरीर में बहकर आता है, वह दाहने
जमा होता है। हृदय रक्त संचित होने के लिए एक प्रक
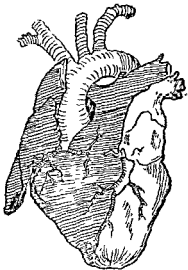
चित्र नं० ३, हृदय

हौज है; और इसीलिए इसको रक्ताशय भी कहते हैं। हृद
थैली वक्षस्थल में, दोनों फेफड़ों के बीच में, बाईं ओर को
तिरछी सी रखी है। बाईं ओर की तीसरी पसली से ले
छठवीं पसली तक इसकी लम्बाई लगभग पांच इञ्च
इसी प्रकार पांचवीं और छठवीं पसली के बीचों बीच हृदय
धड़कन होती रहती है। इसका ऊपर का भाग, बाह्यगोल,

नीचे का भाग समतल "उरोदपटल" (अर्थात् डायफ्राम) से मिला हुआ है ।

अस्तु। ऊपर हम कह चुके हैं कि हृदय के दक्षिण और वाम दो भाग हैं। इनमें से प्रत्येक भाग में दो दो कोठड़ियां हैं। इस प्रकार हृदय में कुल चार कोठड़ियां हैं। एक एक कोठड़ी ऊपर की ओर और एक एक नीचे की ओर। ऊपरवाली कोठड़ियों को "औरिकल" और नीचेवाली को "वेन्ट्रिकल" कहते हैं। इन दोनों भागों के बीच में एक छेद रहता है। उसमें पड़दे लगे रहते हैं; और उन पड़दों में छोटे छोटे बन्धन लगे रहते हैं, जिनके संयोग से पड़दे खुलते और बन्द होते रहते हैं। हृदय की चारों कोठड़ियों से रक्तवाहिनियों का सम्बन्ध रहता है। दाहिनी ओर की ऊपर की कोठड़ी (औरिकल) से शरीर के ऊपर और नीचे की दो बड़ी शिरायें मिली रहती हैं। इसी प्रकार दाहिनी नीचे की ओर की कोठड़ी (वेन्ट्रिकल) से एक बड़ी धमनी निकलती है, जिसके दो भाग होकर दोनों फेफड़ों में जा मिलते हैं। फेफड़ों से भी शिराएं निकली हैं, जो बायीं औरिकल (ऊपर की कोठड़ी) में जाती हैं। इसी प्रकार वाम ओर की नीचे की कोठड़ी (वेन्ट्रिकल) से एक बड़ी धमनी चलती है, जिसकी शाखाएं सारे शरीर में फैली हुई हैं। प्रत्येक धमनी के मुख पर अर्धचन्द्राकार पड़दे रहते हैं; जो धमनी की ओर खुलते और नीचे की कोठड़ी (वेन्ट्रिकल) की ओर बन्द होते हैं। ऊपर कह चुके हैं कि हृदय के दो भागों में से दाहने में अशुद्ध रक्त और बायें में विशुद्ध रहता है। यह

शिराओं और धमनियों के द्वारा सारे शरीर में दौड़ता रहता है। लाल (शुद्ध) रक्त सारे शरीर में जाकर, शरीर का विकार अपने साथ लेकर, कुछ काला सा हो जाता है। इसी विकृत रक्त में अन्नरस का सम्मिश्रण होकर, फिर वह सम्मिश्रण हृदय में आता है; और दाहिनी ऊपर की कोठड़ी (औरिकल) में उतर कर फिर उसी ओर की नीचे की कोठड़ी (वेन्ट्रिकल) में पहुँच‍ है। इन दोनों कोठड़ियों के बीच का पड़दा ज्यों ही बन्द हुआ त्योंही हृदय आकुंचित होता है; और रक्त जोर से फेफड़ों में प्रवि होता है। इधर फेफड़ों में श्वास द्वारा आई हुई आक्सिजन (प्राण वायु) उस काले रंग के विकार को खून से चूसकर बाहर प्रश्वास द्वारा फेंक देती है। रक्त शुद्ध लाल हो जाता है। इस प्रकार फेफड़ों में रक्त शुद्ध हो जाने के बाद, फिर वह हृदय-मन्दिर के दूसरे कुंड में आता है; और फिर वहां से जोर के साथ धमनियों में प्रविष्ट होकर सारे शरीर में दौड़ता है। यह क्रिया बराबर जारी रहती है।

हम पहले कह चुके हैं कि हृदय के दाहने भाग से शिरायें सारे शरीर में फैली हैं, जो अशुद्ध रक्त को सारे शरीर से हृदय के उक्त भाग में ले आती हैं और धमनियां बायें भाग से शुद्ध रक्त सारे शरीर में दौड़ाती हैं। इस प्रकार इनका जाल सब शरीर में फैला हुआ है। ये शिरायें और धमनियां जहां जहां एक दूसरे से मिलती हैं, वहां वहां एक प्रकार के पड़दे, दरबान (गेट-कीपर) की तरह, लगे हैं, जो शरीर में शुद्ध और अशुद्ध रक्त का मिश्रण नहीं होने देते।

चित्र सं० ५ रुधिराभिसरण
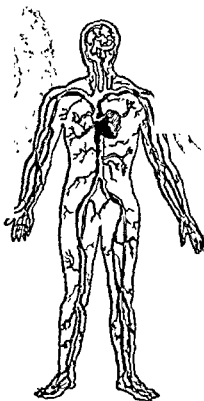
रेखाएं शुद्ध रक्त की और काली अशुद्ध रक्त की
दिखाई गई हैं।

हृदय की धड़कन—हृदय के दाहने रक्ताशय में खराब मूल फेफड़ों में भरता है—वह बाईं तरफ को नहीं जा सकता। इसी प्रकार फेफड़ों से उतरा हुआ शुद्ध रक्त बायें रक्ताशय में आता है, और वह जब तक सारे शरीर में घूमकर फिर हृदय में न आ जाय, तब तक दाहनी ओर को नहीं जा सकता। हृदय और फेफड़े के बीच रक्त के एक बार आवागमन से ही हृदय में एक धड़कन पैदा होती है। इसी से मनुष्य की नाड़ियों की गति भी मालूम होती है। मनुष्य के जीवित रहने का यही लक्षण है। इस क्रिया व अचानक बन्द हो जाना ही हृदय की गति का रुक जाना—य "हार्ट फेल" हो जाना है। उक्त एक धड़कन के बीच में हृद सिकुड़ता और बन्द होता है, साथ ही विश्राम भी करता है। एक मिनट में प्रायः सत्तर से अस्सो बार तक, प्रत्येक मनुष्य की शक्ति के अनुसार, हृदय धड़कता है। इसी धड़कन में हृदय का सिकुड़ना, बन्द होना और विश्राम करना—हो जाता है। औसत दर्जे लगभग सवा सेकंड में एक धड़कन होती है। इस सवा सेकंड को यदि दस भागों में विभाजित करें, तो उनमें से तीन भागों में हृदय खुलता, चार भागों में बन्द होता, और तीन भागों में विश्राम करता है। इसी से हृदय की धड़कन की बारीकी पाठकों के ध्यान में आ जायगी। बालक का हृदय एक मिनट में एक सौ दस से एक सौ पचीस बार तक धड़कता है। हृदय की चार धड़कनें प्रायः फेफड़ों के एक बार के श्वास-प्रश्वास के बराबर होती हैं।

उरोदरपटल (डायफ्राम)—यह एक लचीला, चिकना और मजबूत स्नायु-पटल है, जो छाती और पेट के मध्य में लगा

चित्र नं० २, डायफ्राम या उरोदर-पटल
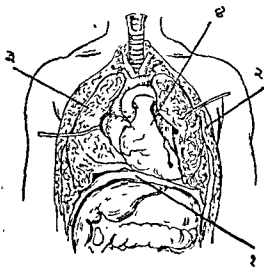
१ डायफ्राम, २ और ३ दोनों फेफड़े, ४ हृदय

रहता है। इसको विभाजक पड़दा या मध्यपटल भी कह सकते हैं। इसका आकार मेहराब या गुम्बज की तरह है। यह छाती की ओर बाह्यगोल और पेट की तरफ अन्तर्गोल है। इसका पिछला भाग नीचे की ओर आया हुआ है, और

अगला भाग ऊंचा है। इसके ऊपर की ओर फेफड़े और हृदय—रक्ताशय है । नीचे की ओर कलेजा, अन्नाशय प्लीहा और अँतड़ियाँ मिली हुई हैं। श्वास-प्रश्वास को क्रिया में इस पड़दे का भी काफी भाग है। जब हम श्वास भीतर लेते हैं, तब यह पड़दा नीचे गिरता है, और इससे छाती तथा फेफड़े का विस्तार बढ़ता है। अतएव फेफड़ों के सब छोटे-बड़े कोष और नलिकाएं प्राणप्रद वायु से पूर्ण भर जाती हैं, और फिर ज्यों ही यह पड़दा नीचे से ऊपर उठता है त्यों ही छाती संकुचित होती है और भीतर की गन्दी वायु प्रश्वास से बाहर निकल जाती है। इस प्रकार यह पड़दा क्षण क्षण पर नीचे-ऊपर होता हुआ श्वास-प्रश्वास की क्रिया में उपयुक्त होता रहता है।

सारांश—पिछले वर्णन से पाठकों को मालूम हो गया होगा कि रक्त पहले सारे शरीर से हृदयमन्दिर में जाता है। फिर वहां से फेफड़ों में जाकर श्वास-प्रश्वास के द्वारा शुद्ध होता है, और फिर हृदय के दूसरे कोठे में आकर वहां से वह सारे शरीर में संचार करता है। यह क्रिया प्रतिक्षण होती ही रहती है। इसी पर शरीर की स्थिति पूर्णतया अवलम्बित है। कहते हैं कि एक मिनट में सात बार रक्त सारे शरीर में घूम जाता है, और चौबीस घंटे के अन्दर दो सौ बावन मन रक्त हृदय से फेफड़े में शुद्ध होने को आता है, और फिर हृदयमन्दिर में वापस चला जाता है। इसीसे हृदय और फेफड़े की क्रिया और रक्त की गति का अनुमान सहज में लगाया जा सकता है।

श्वास-प्रश्वास की भिन्न भिन्न इन्द्रियों के वर्णन से पाठकों को
ालूम हो चुका है कि फेफड़े रक्त-शुद्धि करने के लिए एक धौंकनी
ा इञ्जिन की तरह हैं; और हृदय रक्त का मानो एक हौज है, जिस
एक भाग में शुद्ध रक्त और दूसरे में अशुद्ध रक्त आता है। जो
ास हम नाक के द्वारा अन्दर खींचते हैं, वह बीच में ऊष्मा
क से भरे हुए वायुमार्ग से गरम होकर फेफड़ों में जाती है।
ां यह हवा लाखों सूक्ष्म वायुनलिकाओं के द्वारा फैलती है।
ांस लेने के साथ ही उरोदपटल—डायफ्राम का मेहरावदार
ड़दा—नीचे झुकता है, इससे छाती तथा फेफड़ों का विस्तार
ोकर हवा पैठती है और सांस छोड़ने के साथ ही वह पड़दा
र उठता है, तो छाती और फेफड़े सिकुड़ जाते हैं; और
स बाहर निकलती है। बाल के बराबर बारीक रक्तवाहक
लियों के द्वारा हृदय से चला हुआ रक्त, केशाकर्षण से सूक्ष्म
नलियों में घुसता है; और शरीर के प्रत्येक भाग का
ण करके फुर्तीला और मजबूत बनाता है। इसके बाद दूसरी
ोक नलियों के द्वारा रक्त, केशाकर्षण से ही, हृदयमन्दिर में
लौटता है, और फिर वहां से फेफड़ों के स्पंज में भरकर शुद्ध
होता है। रक्त जब हृदयमन्दिर से सारे शरीर में दौड़ने के
लिए चलता है, तब वह बहुत ही ताजा, तेजस्वी, लाल रंग का
और स्फूर्तिदायक होता है; परन्तु जब शरीर भर में संचार
करके—अपना काम करके—लौटता है, तब बहुत ही निस्तेज,
कुछ कालापन लिये हुए, आलस्यदायक—अर्थात् शरीर भर

की गन्दगी को लिये हुए आता है। हृदयमन्दिर से तो वह विशुद्ध स्वच्छ झरने की तरह चलता है, और जब फिर वा आता है, तो एक गन्दी नाली की तरह होता है। रक्त का अशुद्ध प्रवाह हृदय के दाहने कुंड में आता है। जब यह कु बिलकुल भर जाता है, तब आकुंचित होता है, और रक्त जोर से फेफड़ों में आकर वायुकोषों के स्पंज में भर जाता है। सात करोड़ बीस लाख के करीब वायुकोष क्या हैं—मानो धोबियों के कुंड या टब की तरह हैं। जैसे धोबी अपनी कुंडियों में डालकर पानी से वस्त्र धोते हैं, उसी प्रकार रक्त इन वायुकोषों में भरकर श्वास के द्वारा ली हुई प्राणवायु से शुद्ध होता है। ऐसा अद्‌भुत धोबीखाना संसार में और कहीं नहीं मिलेगा। अस्तु। यह प्राणवायु, अर्थात् आक्सिजन क्या है? यह एक प्रकार की आग है। आप खुली हवा में जोर से खींचिये, तो नाक के भीतर की त्वचा में एक प्रकार की मीठी सी जलन (तेजी) का अनुभव होगा। इसी आक्सिजन तेजी से, फेफड़ों के उन वायुकोषों के अन्दर भरे हुए रक्त मैल जल जाता है। महर्षि मनु ने अपनी स्मृति में प्राणायाम लाभ बतलाते हुए कहा है कि जैसे धातुओं को तपाने से उन मैल साफ हो जाता है, उसी प्रकार प्राणायाम के द्वारा, प्राण निग्रह करने से, इन्द्रियों के सारे दोष धुल जाते हैं। अर्था श्वास-प्रश्वास के द्वारा रक्त शुद्ध होकर जब हृदयमन्दिर से सा शरीर में वेग के साथ दौड़ता है, तब शरीर की सभी इन्द्रियाँ

स्फूर्ति आती है। मस्तिक की ओर भी पवित्र और ताजा खून पर्याप्त रूप में आता है, और दिमाग़ में फुर्ती आकर मन भी शुद्ध तथा मजबूत बनता है। शरीर की शुद्धि के साथ साथ विचारों की भी शुद्धि होती है।

छठा अध्याय

ज्ञानतन्तु-व्यूह और प्राणायाम

पाश्चात्य शरीर-शास्त्रियों को केवल श्वसन-क्रिया के द्वारा रुधिर में होनेवाले परिवर्तन का ही ज्ञान है। अर्थात् वे केवल इतना ही जानते हैं कि श्वास लेने से अक्सिजन नामक तत्व रुधिर में शोषित होता है; और इससे रुधिर अत्यन्त शुद्ध और जीवन-तत्व-मय हो जाता है। बस, इससे अधिक वे और कुछ नहीं जानते। परन्तु आर्यावर्त के योगी जन यह भी जानते हैं कि श्वसन-क्रिया से प्राणतत्व भी शरीर में शोषित होता है, और उससे ज्ञानतन्तुओं के व्यूह पोषित होते हैं। अस्तु। इस परिच्छेद में हम ज्ञान-तन्तु-व्यूह (Nervous system) का थोड़ा सा विचार करेंगे, क्योंकि श्वास-प्रश्वास की क्रिया से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है।

मनुष्य-शरीर में रहनेवाले ज्ञानतंतुओं का समूह दो विभागों में विभाजित किया गया है। प्रथम मस्तिष्क और रीढ़ की हड्डी के पोलान में रहनेवाला ज्ञान-तंतुओं का समूह, और दूसरा छाती, उदर, और पेड़ू के पोलान में रहनेवाला ज्ञान-तंतुओं का समूह। प्रथम भाग को यूरोपियन शरीरशास्त्री "सेरेब्रो स्पाइनल सिस्टम" (Cerebrospinal system) कहते हैं

और द्वितीय विभाग को "सिम्पथेटिक सिस्टम" (Sympabetic system) कहते हैं। शरीर में स्वेच्छा-पूर्वक होनेवाली क्रियाओं और वासनाओं, इत्यादि के व्यापार प्रथम प्रकार के ज्ञान-तंतु करते हैं, और शरीर की वृद्धि, पचन-क्रिया, इत्यादि स्वाभाविक तौर से होनेवाले व्यापार द्वितीय प्रकार के ज्ञान-तन्तु करते हैं।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध को पहिचानने का व्यापार मस्तिष्क और रीढ़ की हड्डी में रहनेवाले ज्ञानतंतुओं के द्वारा होता है। इसके सिवाय, अवयवों का गतिमान होना जीवात्मा का विचार करना, और अपने अस्तित्व का भान भी इन्हीं ज्ञान-तंतुओं के द्वारा होता है। वाह्य जगत् के साथ अभिमानी जीवात्मा उपर्युक्त प्रथम प्रकार के ज्ञान-तंतुओं के द्वारा ही सम्बन्ध स्थापित करता है। ज्ञान-तंतुओं के इस व्यूह की समानता यदि टेलिग्राफिक यंत्र से की जाय तो हो सकती है; क्योंकि यदि मस्तिष्क प्रधान तार-आफिस गिना जावे तो रीढ़ की हड्डी अर्थात् मेरुदण्ड और उसमें से प्रवाहित होनेवाले अगणित ज्ञानतंतु उक्त प्रधान आफिस से सम्बन्ध रखनेवाली तारों की डोरियां हैं।

मनुष्य का मस्तिष्क भी तीन विभागों में विभाजित किया गया है। प्रधान मस्तिष्क, गौण मस्तिष्क, और अधःस्थित मस्तिष्क। प्रधान मस्तिष्क को अंग्रेजी में "सेरीब्रम" (Cerebrum) कहते हैं। इसमें मनुष्य की [illegible] अगळे, मध्य, और

बुद्धि के व्यापार, अर्थात् मानस व्यापार, मुख्य मस्तिष्क में होते हैं। अब, जीवात्मा अपने इच्छानुसार शरीर के जिन अवयवों को गतिमान् करता है, उन अवयवों की सारी हलचल का आधिपत्य गौण मस्तिष्क के पास है। तीसरा अधःस्थित मस्तिष्क है, जो रीढ़ की हड्डी का शिरोभाग है। इससे और प्रधान मस्तिष्क से असंख्य ज्ञानतंतु खोपड़ी के अन्दर विविध भागों में फैल रहे हैं। इनमें से बहुत से ज्ञानतन्तु भिन्न भिन्न इन्द्रियों के गोलकों तक पहुँचे हैं। कई ज्ञानतन्तु छाती, पेट और श्वास-प्रश्वास लेने के अवयवों तक फैले हुए हैं।

पीठ के बीचों बीच रीढ़ की हड्डियां लम्बी जुड़ी हुई चली गई हैं। इसके बीच में जो पोला भाग है, उसमें गुद्दी भरी रहती है। इसी लम्बी छड़ी को मेरुदण्ड कहते हैं। इसमें ज्ञानतंतुओं का एक बड़ा भारी समूह रहता है। शरीर के समस्त अवयवों से सम्बन्ध रखनेवाले असंख्य ज्ञानतंतु इससे निकलकर शरीर में फैले हुए हैं। यह मेरुदण्ड तार की विशाल मुख्य डोरी के समान है, और उसमें से निकलनेवाले ज्ञानतन्तु इस मुख्य डोरी की शाखाओं के समान हैं।

छाती, उदर और पेड़ू के भाग में रहनेवाले ज्ञानतन्तुओं के समूह में दो शृंखलाएँ मेरुदण्ड के दाहने-बायें, दोनों ओर हैं। इनको क्रमशः इड़ा और पिङ्गला नाड़ी कहते हैं। और पृष्ठरज्जु के बीच से जानेवाली जो पोली सी नली है, उसे [illegible] कहते हैं। इनके अतिरिक्त सिर, गर्दन, छाती [illegible]

पूर्वक रहनेवाली ज्ञानतंतुओं की गठियाँ हैं। इन ग्रंथियों का
के द्वारा एक दूसरे के साथ सम्बन्ध स्थापित रहता है। मस्ति
तथा पृष्ठरज्जु के ज्ञानतन्तुओं के साथ भी इनका इसी प्र
सम्बन्ध रहता है। इन ग्रंथियों में से अत्यन्त सूक्ष्म रेशे निकल
शरीर के भिन्न भिन्न अवयवों तथा रक्तवाहिनियों तक पहुँचते
हैं। भिन्न भिन्न स्थानों में परस्पर ज्ञानतन्तु एकत्रित हुए रहते हैं
और जिस स्थान में वे एकत्रित हुए रहते हैं, उस स्थान को आर्यावर्त
योगी "चक्र" कहते हैं। मनुष्य-शरीर में ज्ञानतन्तुओं के एकत्रित
होने के ऐसे मुख्य चक्र छै हैं। उनको आधार-चक्र, स्वाधिष्ठान
चक्र, मणिपूर चक्र, अनाहत चक्र, विशुद्ध चक्र, और आज्ञा-चक्र
कहते हैं। सहस्रदलकमल नामक सातवें चक्र को और मनस्
नामक आठवें चक्र को भी कुछ विद्वानों ने इन्हीं चक्रों में गणना
की है। ज्ञानतन्तुओं का यह समूह शरीर में रक्तसंचार, श्वसन
क्रिया, पचन-क्रिया इत्यादि स्वाभाविकता से होनेवाली क्रियाओं
का नियमन किया करता है।

मस्तिष्क ज्ञानतन्तुओं के द्वारा शरीर के समस्त भागों में जिस सामर्थ्य का प्रवाह पहुँचाता रहता है, उसे अंग्रेजी में (nerve force) 'ज्ञान-तंतु-बल' कहते हैं; और आर्यावर्त के योगी इस सामर्थ्य को "प्राणतत्व की एक कला" कहते हैं। इस सामर्थ्य का वेग विद्युत् के प्रवाह और वेग से मिलता हुआ है। यदि शरीर में यह सामर्थ्य न हो, तो रुधिराभिसरण एकदम मन्द होकर हृदय की गति भी रुक जाती है, फेफड़े श्वसन-क्रिया

न्द कर देते हैं, और शरीर के भिन्नभिन्न अवयवों का स्वाभाविक व्यापार एकदम बन्द हो जाता है। सारांश यह है कि इन तंतुओं के इस सामर्थ्य के बिना शरीररूपी यह यंत्र गतिहीन हो जाता है और मस्तिष्क भी, प्राणतत्व से पैदा होनेवाले इस सामर्थ्य के बिना, विचार करने में शक्तिहीन हो जाता है।

इससे यह बात सहज ही ध्यान में आ जायगी कि प्राणतत्व की शरीररूपी यंत्र में कितनी अधिक आवश्यकता है। अतएव सर्वोत्तम स्वास्थ्य के लिये प्राणायाम शास्त्र का सांगोपांग ज्ञान प्राप्त करना प्रत्येक मनुष्य के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

नाभि के पास ज्ञान-तंतुओं का जो समूह है उसे अंग्रेजी में "सोलर प्लेक्सस" (Solar plexus) कहते हैं। संस्कृत में इसे "मणिपूर्-चक्र" कहते हैं। इसके सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों का ज्ञान अभी बहुत पीछे है। पाश्चात्य विद्वान् इसे केवल ज्ञान-तंतुओं की एक ग्रन्थि ही मात्र समझते हैं। परन्तु आर्य-शास्त्रों के अनुसार यह शरीर में एक अत्यन्त ही आवश्यक चक्र है। योगी लोग इस चक्र में मन का स्थान मानते हैं। मानसिक व्यापारों का अधिकांश व्यापार मस्तिष्क से ही होता है, इसलिये मन का स्थान मस्तिष्क में माना गया है। तथापि शरीर के आभ्यन्तर मुख्य अवयवों का नियामक और चालक यह नाभि-स्थित मणिपूर-चक्र ही माना गया है। इसीलिए यहां के योगियों ने इसे विशेष महत्व प्रदान किया है। मस्तिष्क के समान ही यह चक्र भी सफेद और भूरे रंग के खोये के समान पदार्थों का बना
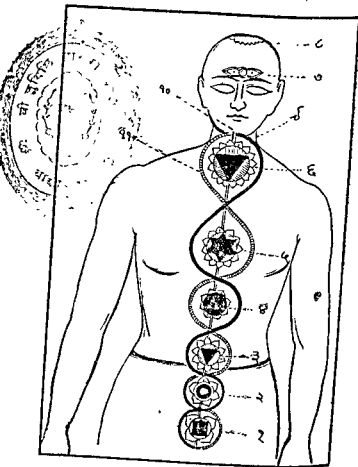
चित्र नं० ७—षट् चक्र
१ आधारचक्र २ स्वाधिष्ठान ३ मणिपूर ४ मनरचक्र ५ अनाहतचक्र ६ विशु
चक्र ७ आज्ञाचक्र ८ सहस्रदल कमल ९ इडा १० सुषुम्ना ११ पिंगला।

आ है। प्राण में से जो जीवनतत्व शरीर में शोषित होता है, सका संचय इसी चक्र में होता है। इसीसे इस चक्र को जीवन त्व का कोष भी कहते हैं। यहां प्राणतत्व का भंडार रहता है; और इसीलिए चतुर पहलवान् इसी मर्मस्थल पर विपक्षी को हार कर के बेसुध कर देते हैं। इस स्थान पर कठोर आघात रने से मृत्यु भी हो जाती है।

सूर्य्य से जिस प्रकार सारे संसार को प्रकाश और चैतन्य प्राप्त होता है, उसी प्रकार इस चक्र के द्वारा भी शरीर के समस्त अवयवों को प्राण से शोषित हुआ जीवनतत्व प्राप्त होता है; और इसीसे समस्त अवयव बलवान और पुष्ट होते हैं। मस्तिष्ककी शक्तियों का आधार भी इसी चक्र से प्राप्त होनेवाला जीवनतत्व है। विधिवत् कुंभक अर्थात् श्वास का निरोध करना, इस चक्र में जीवनतत्व संचय करने के लिए एक अत्यन्त उपयोगी साधन है। जीवनतत्व शरीर में अधिक परिमाण में संचित हो जाय, तो सब व्याधियों का नाश हो जाता है; और पूर्ण आरोग्य प्राप्त होता है।

प्राणायाम से समस्त व्याधियों के नाश होने का वर्णन योग-शास्त्रों में किया गया है और वह अक्षरशः सत्य है। जो मनुष्य प्राणायाम को नासिका पकड़ने की निष्फल क्रिया कहकर उसका उपहास करते हैं, वे वास्तव में प्राणायाम का उपहास नहीं करते, बल्कि योगशास्त्र के विषय में अपनी अनभिज्ञता प्रकट करके स्वयं उपहास के पात्र बनते हैं।

सातवाँ अध्याय

श्वास-प्रश्वास का मुख्य द्वार नासिका ही है

योगशास्त्र, प्राणायाम के अभ्यास करनेवाले प्रत्येक साधक को नासिका-द्वारा ही श्वसन-क्रिया करने का उपदेश देता है। हाँ प्राणायाम के कुछ ऐसे भी भाम-भेद हैं, जिनमें मुख-द्वारा वायु छोड़नी और ग्रहण करनी पड़ती है, परन्तु इनके सिवाय सब प्रकार की श्वसन-क्रिया में नासिका-द्वारा ही वायु ग्रहण करने और छोड़ने का विधान किया गया है।

मुख और नासिका, इन दोनों द्वारों से मनुष्य श्वास सकता है; और छोड़ सकता है। यह सत्य है। परन्तु श्वास लेने और छोड़ने का प्राकृतिक अवयव मुख नहीं, नासिका है। अतएव नासिका द्वारा ही श्वास लेने और छोड़ने का अभ्यास प्रत्येक मनुष्य को करना चाहिये। क्योंकि यह अनुभव से सिद्ध हो चुका है कि नासिका द्वारा श्वास लेने और छोड़ने से मनुष्य आरोग्य और बल प्राप्त करता है, और मुख-द्वारा श्वसन-क्रिया करनेवाला मनुष्य नाना प्रकार की व्याधियों में ग्रस्त रहता है।

हमारे लिखने का यह तात्पर्य नहीं है कि प्राणायाम का अभ्यास करनेवालों को ही नासिका-द्वारा श्वसन-क्रिया करना चाहिये। प्रत्युत श्वसन-क्रिया-द्वारा जीनेवाले प्रत्येक मनुष्य को—

फिर वह प्राणायाम का अभ्यास करता हो चाहे न करता हो— हमेशा नासिका-द्वारा ही श्वसन-क्रिया करनी चाहिये। प्राकृतिक अवस्था में मनुष्य इसी तरह किया करते हैं। छोटे बच्चे अपने आप नासिका-द्वारा श्वसन-क्रिया करते हैं; परन्तु अवस्था बढ़ जाने पर मनुष्य जिस तरह सैकड़ों कार्यों में प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करता है, वैसे ही इस विषय में भी वह किया करता है। थोड़ा भी शारीरिक परिश्रम करने का अवसर आया कि सैकड़ों मनुष्य मुख-द्वारा श्वास लेकर हांफने लग जाते हैं। स्थूल मनुष्य ऊँचाई के चढ़ाव पर चढ़ते समय मुख फैलाकर हांफने लग जाते हैं। स्त्रियां जल भरते समय, कूटते समय, पीसते समय या ऐसा ही कोई दूसरा कार्य करते समय, मुख खोलकर हांफने लग जाती हैं। निर्बल, रोगी मनुष्य उठते, बैठते तथा चलते समय श्वसन-क्रिया करने के लिये नासिका के बदले मुख का उपयोग किया करते हैं। दमा की व्याधि से पीड़ित मनुष्य तो प्रायः यह भूल से जाते हैं कि श्वसन-क्रिया का अवयव नासिका है। श्वास ग्रहण करते हुए वे भारी आवाज के साथ वायु को मुख-द्वारा खींचते हैं, और छोड़ते हैं। इस तरह सिर्फ रोगी ही नहीं, किन्तु नीरोग मनुष्य भी, वृद्ध, जवान स्त्रियाँ तथा बड़ी उमर के बच्चे भी, दिन के अधिकांश भाग में नासिका-द्वारा श्वसन-क्रिया करने के बदले मुख-द्वारा ही श्वसन-क्रिया करते हैं।

हमारे देश के अज्ञान मनुष्य ही श्वसन-क्रिया में ऐसी भूल नहीं करते हैं, प्रत्युत सुधरे हुए देशों के लोग भी श्वसन-क्रिया

के सम्बन्ध में ऐसे ही अज्ञान हैं। वहाँ के भी स्त्री, पुरुष और बच्चे कुछ भी शारीरिक परिश्रम करने के बाद, मुख फैलाकर हाँफने लग जाते हैं। इससे उन देशों में भी नाना प्रकार की व्याधियों में वे लोग ग्रस्त रहते हैं। बाल्यावस्था में ही यदि इस खराब आदत को न रोका गया, तो बच्चे रोगी, शक्ति हीन और निर्बल ढांचे के बन जाते हैं और बड़ी उमर के होने पर भी वे हृष्ट-पुष्ट नहीं होते हैं। इतना ही नहीं, प्रत्युत वे सदा बीमार के समान ही रहा करते हैं। जंगलों में रहनेवाली जंगली जाति भी इन बातों में, सुधरी हुई जातियों से, अधिक ज्ञान रखती है। जंगली जाति की माताएँ अपने बालकों के ओष्ठ बन्द कर देती हैं और उनको नासिका द्वारा श्वसन-क्रिया करने की आदत डालती हैं। बालक जब सोता है तब वे उसके सिर को आगे नवा देती हैं इससे उसके ओष्ठ बन्द हो जाते हैं, और उसको नासिका द्वारा श्वसन-क्रिया करने की आदत पड़ जाती है। जो बालक निद्रा में मुँह खोलकर श्वास लेवे और छोड़ते हैं, उनके माता-पिता को चाहिए कि उपरोक्त क्रिया-द्वारा उनकी यह आदत छुड़ा दें। उनकी तन्दुरुस्ती सुधारने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है।

मुख-द्वारा श्वसन-क्रिया करने से बहुत से चेपी के रोग हो जाते हैं। श्वास, नासिका तथा कंठ के कितने ही रोग होने का कारण भी मुख द्वारा सांस लेना ही है। यह देखी हुई बात है कि बहुत से मनुष्य दिन को नासिका द्वारा ही श्वसन-क्रिया करते हैं, परन्तु निद्रा में वे असावधान होकर मुख से श्वसन-

। करने लग जाते हैं। रात्रि को मुख खुला रखकर सोने से
रोग होने की सम्भावना रहती है। जिस समय देश में
यूऐन्जा, प्लेग और हैज़े का प्रकोप होता है, उस समय
का-द्वारा श्वास लेनेवालों की अपेक्षा मुख द्वारा श्वास
ले लोग अधिक संख्या में रोगों के शिकार होते हैं।
का-द्वारा श्वसन-क्रिया करनेवाले लोग प्रायः इन व्याधियों
क रहते हैं।

म जो हवा श्वास-द्वारा ग्रहण करते हैं, उस हवा के गर्द-
: को छानने के लिए भगवान् ने हमारी नाक के अन्दर भिल्ली
छोटे छोटे बालों का प्रबन्ध कर दिया है। जब हम नासिका-
श्वास ग्रहण करते हैं, तब हवा का गर्द-गुबार और दूसरी
ो नासिका-द्वार में अटक जाती है। वह अन्दर जा नहीं
' है। परन्तु जब हम मुख-द्वारा श्वास ग्रहण करते हैं तब
ं सम्मिलित इस गन्दगी को रोकनेवाली कोई भी रचना
में न होने के कारण श्वास-नलिका का सारा मार्ग उस
को फेफड़े तक पहुँचा देता है। इससे मुख-द्वारा श्वसन-
करनेवालों के फेफड़ों में रोगों को उत्पन्न करनेवाले नाना
के परमाणु एकत्र हो जाते हैं। इसके सिवाय शीत ऋतु में
म नासिका द्वारा श्वास ग्रहण करते हैं तब हवा गरम होकर
के अन्दर जाती है; परन्तु मुख द्वारा श्वास लेने से ठंडी ही
ो अन्दर जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि बहुत
वा अन्दर जाने से फेफड़ों में कभी कभी सूजन हो जाती

है। रात्रि को मुख खोलकर सोनेवाला मनुष्य जब सुबह जागता तब प्रायः उसे कंठ में तथा मुख में सूजन का अनुभव होता है फेफड़ों में एकदम सर्द हवा मुख द्वारा पहुँचने से निमोनि इत्यादि रोग भी हो जाते हैं।

नासिका के छिद्रों में प्रकृति ने बहुत से बालों की रचना की है। ये बाल हवा में समन्वित धूल के रजकणों को, रोगजनक सूक्ष्म जन्तुओं को, तथा ऐसी ही दूसरी गन्दगी को, फेफड़ों में जाने से रोकते हैं। यह रुकी हुई गन्दगी, जब हम वायु बाहर निकालते हैं, स्वाभाविक ही बाहर निकल जाती है। इसके सिवाय ऊपर के भाग में नासिका को आर्द्र रखनेवाला चि रस रहता है, वह रस भी धूल तथा गन्दगी को, और सू जन्तुओं को, अन्दर जाने से रोकता है। मुख में ऐसा प्र भी प्रबन्ध नहीं है, और इसी से मुख-द्वारा श्वास लेने से रो के परमाणु फेफड़े के अन्दर पहुँच जाते हैं।

मनुष्य के सिवाय कोई भी प्राणी मुख-द्वारा श्वसन-क्रिया नहीं करता है। श्वान प्रसंगानुसार मुख से हांफने की क्रिया करता है; परन्तु यह हांफने की क्रिया उसकी स्वाभाविक श्वसन-क्रिया नहीं है। किसी खास कसरत के लिये वह इस प्रकार हांफता है। ऐसी खास कसरतों में तो मनुष्य भी मुख से श्वसन-क्रिया करे तो वह हानिकारक नहीं है। स्वर को सुधारने की कितनी ही कसरतों में, तथा आरोग्यता के लिए किये जानेवाले कई प्राणायामों में मुख-द्वारा श्वसन-क्रिया करने का विधान शास्त्रों में आया है।

परन्तु वहां इस तरह करने के खास खास नियम होते हैं, तथा ऐसी कसरतें अत्यन्त शुद्ध हवा में करनी पड़ती हैं। परन्तु स्वाभाविक रीति से नित्य होनेवाली श्वसन-क्रिया में मुख-द्वारा श्वास लेना और छोड़ना किसी तरह से भी योग्य नहीं है।

हवा को शुद्ध करने का प्राकृतिक यंत्र नासिका है। नासिका की झिल्ली, रोम और रस के द्वारा शुद्ध और गरम होकर वायु फेफड़ों में जानी चाहिए। कभी कभी इस नासिका-यन्त्र में द्वारा भी कोई अनिष्ट परमाणु जब अन्दर जाने लगते हैं तब प्रकृति छींक लाकर फेफड़ों का रक्षण करती है। छींक एक धड़ाके की आवाज के साथ उन अनिष्ट परमाणुओं को बाहर निकाल देती है।

साधारण जल और शुद्ध फिलटर किये हुए जल में जितना भेद है, उतना ही भेद बाहर की हवा में और नासिका द्वारा शुद्ध होकर फेफड़े के अन्दर गई हुई हवा में है। एक अशुद्ध है दूसरी शुद्ध है। मुख-द्वारा श्वास लेनेवाले अशुद्ध हवा ग्रहण करते हैं; और नासिका द्वारा श्वास लेनेवाले शुद्ध हवा ग्रहण करते हैं।

मुख-द्वारा श्वास लेने से एक दूसरी भी हानि होती है वह यह कि नासिका के मार्गों का उपयोग कम हो जाता है और इसी से कुछ दिन बाद श्वसन-क्रिया-रहित नासिका निरुपयोगी हो जाती है। धीरे धीरे वह मल से भर जाती है इससे नासिका-सम्बन्धी नाना प्रकार की व्याधियां उत्पन्न हो

जाती हैं। कितने ही मनुष्यों की नाक की झिल्लियां मन्द
जाती हैं; और इस कारण वे सारे दिन नासिका-द्वारा सूं
करते हुए नजर आते हैं। ऐसे मनुष्य निद्रा में मुख खोल
सोनेवाले होते हैं। नासिका-द्वारा श्वसन-क्रिया करनेवालों
नासा इन्द्रिय सदैव ताजी और साफ रहती है। मुख-द्वारा श्वा
लेनेवालों को नासिका-सम्बन्धी अनेक रोग हो जाते हैं। ऐसे
रोगियों की यह व्याधि प्रातःकाल नासिका-द्वारा जल पीने से
मिट जाती है और फिर उनकी मुख द्वारा श्वांस लेने की आदत
छूट जाती है। नासिका द्वारा जल पीने से नेत्र-सम्बन्धी तथा
मस्तक-सम्बन्धी तमाम व्याधियां मिट जाती हैं।*

इसके अतिरिक्त लोम विलोम पूरक-रेचक प्राणायाम करने
भी नासिका के बन्द हुए मार्ग खुल जाते हैं। खुली हवा
नासिका का एक छिद्र बन्द करके दूसरे छिद्र द्वारा कई बा
वायु ग्रहण करना और छोड़ना चाहिए। फिर बन्द किये हुए
छिद्र को खुला करके खुला हुआ छिद्र बन्द करना चाहिये।
और फिर पहले के समान ही खुले हुए छिद्र से श्वास
और छोड़ना चाहिये। इसी को लोम-विलोम पूरक-रे
प्राणायाम कहते हैं। यदि किसी को कफ-सम्बन्धी व्याधि
और वह लोम-विलोम पूरक-रेचक करना चाहे तो उसे पहि

* प्रातःकाल नासिका द्वारा जल पीने का विधान [illegible] जी की "जल-पान" नामक पुस्तक में विस्तारपूर्वक दिया गया है।

कुछ दिन तक गो-घृत को पैसे पैसे भर लेकर दोनों छिद्रों में सूंघना चाहिये। अस्तु। मुख से श्वसन-क्रिया करने की कुटेव यदि किसी को पड़ गई हो तो उसे तुरन्त छोड़ देनी चाहिये तथा अपने सम्बन्धियों को भी यह आदत छुड़ा देनी चाहिये। जो लोग नासिका के बालों को उखड़वा डालते हैं, वे प्रकृति के बनाये हुए उपयोगी यंत्र का कैसा विनाश करते हैं; और अपनी कितनी हानि करते हैं, यह भी बुद्धिमान पाठकों को इस विवेचन से स्पष्ट मालूम हो जायगा।

आठवाँ अध्याय

वास्तविक श्वास-प्रश्वास

योगशास्त्र के जाननेवाले कहते हैं कि यदि मनुष्य श्वास-प्रश्वास की क्रियाएँ यथार्थ रीति से करते रहें, तो सैकड़े पीछे ९० रोग कम हो जावें। उनका यह कथन यथार्थ है; क्योंकि श्वसन-क्रिया पर ही मनुष्य-जीवन का मुख्य आधार है।

वास्तविक श्वसन-क्रिया में श्वास-प्रश्वास के उपयोग में आने वाले सभी अवयव क्रियावान् होने चाहियें; और जिस श्वसन-क्रिया में श्वास-प्रश्वास के उपयोग में आनेवाले सब अव क्रियावान् नहीं होते हैं, वह श्वसन-क्रिया वास्तविक श्वसनक्रि नहीं है। वास्तविक श्वसनक्रिया पूर्ण आरोग्यता प्रदान उसकी रक्षा करती है; और अवास्तविक श्वसनक्रिया आरोग्य का नाश कर नाना प्रकार के रोगों को उत्पन्न करती है। इसलि वास्तविक श्वसन-क्रिया के यथार्थ रूप का ज्ञान प्राप्त करले मनुष्य मात्र का कर्तव्य है।

वास्तविक श्वसन-क्रिया में पेड़ू से लेकर कंठ तक के सभ अवयव उपयोग में आते हैं। पेड़ू, उदर, जठर, फेफड़े, पस लियां, छाती, और कन्धे, ये सभी अवयव श्वसन-क्रिया के उपयोग में आनेवाले अवयव हैं। वास्तविक श्वसन-क्रिया में

अवयव अत्यधिक परिमाण में गतिमान् होते हैं,
वास्तविक श्वसन-क्रिया में इनमें से अनेक अवयव विल-
गतिमान नहीं होते हैं।

ाक मनुष्य, श्वास लेते समय प्रथम पसलियों को ऊँची
और फिर हँसली की हड्डी तथा कंधे को ऊँचा का
वायु ग्रहण करते हैं। इस प्रकार से वायु ग्रहण करते
उदर को भी संकुचित करते हैं, जिससे "उरोदपटल'
ायफ्राम नामक आवश्यकतानुसार ऊँचा हो जाता है
परिणाम यह निकलता है कि इससे केवल छाती औ
ा ऊपरी भाग गतिमान होता है, जिससे प्राणवा
अल्प परिमाण में फेफड़े के अन्दर जाती है। वास्त
मनुष्य के फेफड़े, प्रत्येक श्वास में, ८० घन इञ्च वा
र सकते हैं; परन्तु ऊपर लिखे अनुसार श्वस
रने से ८० घन इञ्च हवा फेफड़ों में नहीं जा सक
केवल ६० घन इञ्च वायु प्रवेश कर सकती है। इस
ास में २० घन इञ्च वायु कम जाती है, और ि
१६०० श्वास चलने से २४ घन्टों में ४३२००० घन इ
मिलती है। इस प्रकार प्रतिदिन के हिसाब से एक
कम वायु फेफड़ों को मिलती है, इसकी गण
के लिये कठिन नहीं है। वायु ही प्राणियों का जी
के हो द्वारा रक्त शुद्ध होता है, वायु ही स्नायु आदि
मुख्य हेतु है; और वायु ही शरीर, मन, तथा आ

वे सभी अवयव अत्याधिक परिमाण में गतिमान होंगे। और अवास्तविक श्वसन-क्रिया में इनमें से अनेक अवयव बि-कुल ही गतिमान नहीं होते हैं।

अनेक मनुष्य, श्वास लेते समय प्रथम धमनियों को ऊँचा करते हैं और फिर हँसली की हड्डी तथा कंधे को ऊँचा कर फेफड़ों में वायु ग्रहण करते हैं। इस प्रकार से वायु ग्रहण करते समय वे उदर को भी संकुचित करते हैं, जिससे "उरोदपटल" अर्थात् डायफ्राम नामक आवश्यकतानुसार ऊँचा हो जाता है। इसका परिणाम यह निकलता है कि इससे केवल छाती और फेफड़े का ऊपरी भाग गतिमान होता है, जिससे प्राणवायु अत्यन्त अल्प परिमाण में फेफड़े के अन्दर जाती है। वास्तव में एक मनुष्य के फेफड़े, प्रत्येक श्वास में, ८० घन इञ्च वायु ग्रहण कर सकते हैं; परन्तु ऊपर लिखे अनुसार श्वसन-क्रिया करने से ८० घन इञ्च हवा फेफड़ों में नहीं जा सकती है, किन्तु केवल ६० घन इञ्च वायु प्रवेश कर सकती है। इससे प्रत्येक श्वास में २० घन इञ्च वायु कम जाती है, और दिन रात में २१६०० श्वास चलने से २४ घन्टों में ४३२००० घन इञ्च वायु कम मिलती है। इस प्रकार प्रतिदिन के हिसाब से एक वर्ष में कितनी कम वायु फेफड़ों को मिलती है, इसकी गणना बुद्धिमानों के लिये कठिन नहीं है। वायु ही प्राणियों का जीवन है। वायु के ही द्वारा रक्त शुद्ध होता है, वायु ही स्नायु आदि के सन्धेज में मुख्य हेतु है; और वायु ही शरीर, मन, [illegible]

आठवाँ अध्याय

वास्तविक श्वास-प्रश्वास

योगशास्त्र के जाननेवाले कहते हैं कि यदि मनुष्य श्वास-प्रश्वास की क्रियाएँ यथार्थ रीति से करते रहें, तो सौ पीछे ९० रोग कम हो जावें। उनका यह कथन यथार्थ है; क्योंकि श्वसन-क्रिया पर ही मनुष्य-जीवन का मुख्य आधार है।

वास्तविक श्वसन-क्रिया में श्वास-प्रश्वास के उपयोग में आने वाले सभी अवयव क्रियावान् होने चाहियें; और जिस श्वसन-क्रिया में श्वास-प्रश्वास के उपयोग में आनेवाले सब अवयव क्रियावान् नहीं होते हैं, वह श्वसन-क्रिया वास्तविक श्वसनक्रिया नहीं है। वास्तविक श्वसनक्रिया पूर्ण आरोग्यता प्रदान कर उसकी रक्षा करती है; और अवास्तविक श्वसनक्रिया आरोग्यता का नाश कर नाना प्रकार के रोगों को उत्पन्न करती है। इसलिये वास्तविक श्वसन-क्रिया के यथार्थ रूप का ज्ञान प्राप्त करना मनुष्य मात्र का कर्तव्य है।

वास्तिविक श्वसन-क्रिया में पेड़ू से लेकर कंठ तक के सब अवयव उपयोग में आते हैं। पेड़ू, उदर, जठर, फेफड़े, पस-लियां, छाती, और कन्धे, ये सभी अवयव श्वसन-क्रिया के उपयोग में आनेवाले अवयव हैं। वास्तविक श्वसन-क्रिया में

ये सभी अवयव अत्याधिक परिमाण में गतिमान् होते हैं, और अवास्तविक श्वसन-क्रिया में इनमें से अनेक अवयव बिलकुल ही गतिमान नहीं होते हैं।

अनेक मनुष्य, श्वास लेते समय प्रथम पसलियों को ऊँची करते हैं और फिर हँसली की हड्डी तथा कंधे को ऊँचा कर फेफड़ों में वायु ग्रहण करते हैं। इस प्रकार से वायु ग्रहण करते समय वे उदर को भी संकुचित करते हैं, जिससे "उरोदपटल" अर्थात् डायफ्राम नामक आवश्यकतानुसार ऊँचा हो जाता है। इसका परिणाम यह निकलता है कि इससे केवल छाती और फेफड़े का ऊपरी भाग गतिमान होता है, जिससे प्राणवायु अत्यन्त अल्प परिमाण में फेफड़े के अन्दर जाती है। वास्तव में एक मनुष्य के फेफड़े, प्रत्येक श्वास में, ८० घन इन्च वायु ग्रहण कर सकते हैं; परन्तु ऊपर लिखे अनुसार श्वसन-क्रिया करने से ८० घन इन्च हवा फेफड़ों में नहीं जा सकती है, किन्तु केवल ६० घन इन्च वायु प्रवेश कर सकती है। इससे प्रत्येक श्वास में २० घन इन्च वायु कम जाती है, और दिन रात में २१६०० श्वास चलने से २४ घन्टों में ४३२००० घन इन्च वायु कम मिलती है। इस प्रकार प्रतिदिन के हिसाब से एक वर्ष में कितनी कम वायु फेफड़ों को मिलती है, इसकी गणना बुद्धिमानों के लिये कठिन नहीं है। वायु ही प्राणियों का जीवन है। वायु के ही द्वारा रक्त शुद्ध होता है, वायु ही स्नायु आदि के संवेग में मुख्य हेतु है; और वायु ही शरीर, मन, तथा आत्मा

आठवाँ अध्याय

वास्तविक श्वास-प्रश्वास

योगशास्त्र के जाननेवाले कहते हैं कि यदि मनुष्य श्वास-प्रश्वास की क्रियाएँ यथार्थ रीति से करते रहें, तो सैकड़े पीछे ९० रोग कम हो जावें। उनका यह कथन यथार्थ है; क्योंकि श्वसन-क्रिया पर ही मनुष्य-जीवन का मुख्य आधार है।

वास्तविक श्वसन-क्रिया में श्वास-प्रश्वास के उपयोग में आने वाले सभी अवयव क्रियावान् होने चाहियें; और जिस श्वसन-क्रिया में श्वास-प्रश्वास के उपयोग में आनेवाले सब अवयव क्रियावान् नहीं होते हैं, वह श्वसन-क्रिया वास्तविक श्वसनक्रिया नहीं है। वास्तविक श्वसनक्रिया पूर्ण आरोग्यता प्रदान कर उसकी रक्षा करती है; और अवास्तविक श्वसनक्रिया आरोग्य का नाश कर नाना प्रकार के रोगों को उत्पन्न करती है। इसलिए वास्तविक श्वसन-क्रिया के यथार्थ रूप का ज्ञान प्राप्त करना मनुष्य मात्र का कर्तव्य है।

वास्तविक श्वसन-क्रिया में पेड़ू से लेकर कंठ तक के सभी अवयव उपयोग में आते हैं। पेड़ू, उदर, उदर, फेफड़े, [illegible] जियां, छाती, और कन्धे, ये सभी अवयव श्वसन-क्रिया के उपयोग में आनेवाले अवयव हैं। वास्तविक श्वसन-क्रिया

ये सभी अवयव अल्पाधिक परिमाण में गतिमान् होते हैं, और अवास्तविक श्वसन-क्रिया में इनमें से अनेक अवयव बिलकुल ही गतिमान नहीं होते हैं।

अनेक मनुष्य, श्वास लेते समय प्रथम पसलियों को ऊँचा करते हैं और फिर हँसली की हड्डी तथा कंधे को ऊँचा कर फेफड़ों में वायु ग्रहण करते हैं। इस प्रकार से वायु ग्रहण करते समय वे उदर को भी संकुचित करते हैं, जिससे "उरोदपटल" अर्थात् डायफ्राम नामक आवश्यकतानुसार ऊँचा हो जाता है। इसका परिणाम यह निकलता है कि इससे केवल छाती और फेफड़े का ऊपरी भाग गतिमान होता है, जिससे प्राणवायु अत्यन्त अल्प परिमाण में फेफड़े के अन्दर जाती है। वास्तव में एक मनुष्य के फेफड़े, प्रत्येक श्वास में, ८० घन इञ्च वायु ग्रहण कर सकते हैं; परन्तु ऊपर लिखे अनुसार श्वसन-क्रिया करने से ८० घन इञ्च हवा फेफड़ों में नहीं जा सकती है, किन्तु केवल ६० घन इञ्च वायु प्रवेश कर सकती है। इससे प्रत्येक श्वास में २० घन इञ्च वायु कम जाती है, और दिन रात में २१६०० श्वास चलने से २४ घन्टों में ४३२००० घन इञ्च वायु कम मिलती है। इस प्रकार प्रतिदिन के हिसाब से एक वर्ष में कितनी कम वायु फेफड़ों को मिलती है, इसकी गणना बुद्धिमानों के लिये कठिन नहीं है। वायु ही प्राणियों का जीवन है। वायु के ही द्वारा रक्त शुद्ध होता है, वायु ही स्नायु आदि के उत्तेजन में मुख्य हेतु है; और वायु ही शरीर, मन, तथा आत्मा

इत्यादि विविध शक्तियों का विकास करनेवाली है। प्राण की प्रधान जन्मदात्री वायु को ग्रहण करते समय मनुष्य कितना असावधान रहता है और उसमें उसके शरीर को कितनी अधिक हानि पहुँचती है, इसका अनुमान करते समय बुद्धि कुंठित हो जाती है।

दुष्काल के दिनों में दिन भर गधे के समान परिश्रम करते रहने पर भी चार पैसे मुश्किल से मिलते हैं। बस, उपर्युक्त श्वसनक्रिया का भी ऐसा ही फल समझिये। इस श्वसनक्रिया में अवयवों के अत्यधिक परिश्रम को देखते हुए फल अत्यन्त अल्प परिमाण में मिलता है। इसलिये बुद्धिमान मनुष्यों को ऐसी श्वसन-क्रिया न करनी चाहिये। वकील, विद्यार्थी, अध्यापक और मस्तिष्क का काम करनेवाले शिक्षित समाज का बहुत बड़ा भाग ऊपर लिखी हुई अवास्तविक श्वसन क्रिया किया करता है; और इसी कारण उनमें से सैकड़ा पीछे ८० मनुष्यों को मंदाग्नि और कोष्ठबद्धता के रोग होते हैं। कंठ और श्वासनलिका के अनेक रोग भी इस अवास्तविक श्वसनक्रिया से ही पैदा होते हैं। अनेक मनुष्यों के कंठ की आवाज एकदम कठोर और अप्रिय होती है—इसका कारण भी श्वसन-क्रिया की त्रुटि ही है। मुख के द्वारा श्वास-प्रश्वास करने की आदत भी ऐसे ही मनुष्यों को होती है। हमारे उपर्युक्त कथन की सत्यता निम्नलिखित क्रिया करने से मालूम हो जायगी।

स्वच्छ और खुली हवा में सीधे खड़े हो जाओ, हाथों को

नों ओर लटकते हुए रखो। पहिले वायु फेफड़ों में से बाहर निकाल दो। फिर पसली, कंधा, तथा हँसली की हड्डी ऊँची कर के उदर को भीतर की ओर संकुचित करो; और वायु श्वास के द्वारा ग्रहण करो। इससे तत्काल ही अनुभव हो जायगा कि तुम्हारे फेफड़ों में वायु बहुत कम तादाद में गई है। फिर कन्धों और हँसली की हड्डी को गिरा दो; और धीरे धीरे फेफड़ों को पूर्णतया वायु से भरो। ऐसा करने से, वास्तविक और अवास्तविक श्वसन-क्रिया का भेद सहज ही समझ में आ जायगा।

कुछ मनुष्य हँसली की हड्डी और कंधे को ऊँचा किये बिना ही, केवल उदर को भीतर की ओर संकुचित कर तथा पसलियों को उठाकर ही, श्वास ग्रहण करते हैं। इस प्रकार से पसलियाँ सहज ऊँची हो जाती हैं, तथा सीने का भाग थोड़ा सा विकसित होता है; परन्तु यह क्रिया भी वास्तविक श्वसन-क्रिया नहीं है। इस क्रिया से भी फेफड़ों में वायु पूर्ण रीति से नहीं जा सकती है। अतएव श्वसन-क्रिया करते हुए भी मनुष्य उसका यथेष्ट लाभ नहीं उठा सकता है।

वास्तविक श्वसन-क्रिया के लाभों को जाननेवाले पश्चिमीय विद्वान श्वसन-क्रिया की एक वास्तविक विधि बतलाते हैं। वह इस प्रकार है:—

एकदम सीधे अकड़कर खड़े हो जाओ, बैठ जाओ, या लेट जाओ। फिर इस प्रकार शांत रीति से वायु को नासिका के द्वारा अन्दर पूरित करो कि पेट का सम्पूर्ण भाग वायु

से भर जाय। इस प्रकार वायु ग्रहण करते समय सीने के भाग को स्थिर रखना चाहिये। इस रीति से वायु ग्रहण करने से प्रथम उदर का भाग फूलता है; और ज्यों ज्यों वायु अन्दर ग्रहण होती जाती है त्यों त्यों उदर के ऊपर के भाग फूलने लगते हैं।

ऊपर की दोनों विधियों की अपेक्षा यह विधि उत्तम व लाभदायक है। क्योंकि इससे वायु फेफड़ों के अन्दर य परिमाण में जाती है। परन्तु यह विधि भी सर्वोत्तम नहीं। इससे केवल उदर और सीने के नीचे तथा मध्य के अवयव गतिमान होते हैं; परंतु छाती के ऊपर का भाग गतिमान नहीं होता है। इसलिये श्वसन क्रिया के सर्वोत्तम लाभों को यह क्रिया पैदा नहीं कर सकती है। श्वसन-क्रिया की जिस अवस्था में उ से लगाकर कंठ तक के सभी अवयव गतिमान होते हैं, उस श्वसन-क्रिया से फेफड़ों में अधिकाधिक वायु प्रवेश कर सकती है; और फेफड़ों में वायु पूर्णतया भर जाने का लाभ यही कि शरीर में, प्रत्येक श्वास के साथ, अधिकाधिक जीवनतत्त्व का प्रवेश और संचय होता रहे।

आर्य-शास्त्रों में श्वसन-क्रिया की जिस विधि का वर्णन है, केवल उसके द्वारा ही उदर से लेकर कंठ तक के सभी अवयव गतिमान् होते हैं। केवल उसीके द्वारा फेफड़ों में वायु पूर्णतया पूरित हो सकती है। वह विधि इस प्रकार है—

सीधे अकड़कर खड़े हो जाओ, बैठ जाओ, या लेट जाओ।

इस प्रकार वायु को बाहर निकाल दो कि फेफड़े पूर्णतया से खाली हो जावें। इसके बाद उदर के भाग को धीरे क्रमपूर्वक संकुचित करने से वह "उरोदपटल" अर्थात्

अतएव फेफड़े तलभाग से लगाकर ऊपर तक खाली हो
हैं । इस प्रकार की उदर-संकोचन-क्रिया को योगशा
उड्डीयान-बंध कहते हैं । वास्तविक तौर से किये जाने
उड्डीयान-बंध का बहुत बड़ा फल यौगिक ग्रन्थों में बतलाया ग
है। योगियों का कथन है कि विधिपूर्वक उड्डीयान बन्ध का
मास अभ्यास करने से वृद्ध पुरुष तरुण होकर मृत्यु पर
विजय प्राप्त कर लेते हैं। वास्तविक श्वसन-क्रिया की विधि
यद्यपि उड्डीयान-बंध यथाविधि नहीं होता है, तो भी उसके स्व
की रचना कुछ अंशों में हो जाती है; और इसी कारण य
अन्य क्रियाओं की अपेक्षा अधिक लाभप्रद है । अस्तु ।

फेफड़े पूर्णतया खाली हो जाने के बाद नासिका के
वायु धीरे धीरे अन्दर ग्रहण करो । पहले फेफड़े के सब से नि
भाग में वायु को भरो । इससे उरोदपटल अर्थात् डायफ्राम
दबाव उदर के भाग पर पड़ेगा, जिससे ऐसा मालूम होगा कि
फूल रहा है । परन्तु इस दशा में भी वायु उदर में नहीं जाती
वह तो फेफड़ों में ही रहती है । अवास्तविक श्वसनक्रिया की ग़ल
आदत से जिन्हें अपना उदर फूलता हुआ न मालूम हो, उन्हें
पर हाथ रखकर वायु पूरित करना चाहिये । क्रम क्रम से अनुभ
होगा कि उदर फूल रहा है । वायु बाहर निकालते समय उदर के
हाथों से साधारण तौर पर दबा देने से उदर का संकोचन तथ
वायु का बाहर निकलना अत्यन्त सरल हो जाता है । अभ्यास
बढ़ जाने पर हाथ रखने की आवश्यकता नहीं है । एक समान

[illegible] इस प्रकार धीरे धीरे वायु पूरित करने से प्रथम फेफड़े के नीचे का भाग पूर्णतया भर जाने से उदर फूलता है। फिर मध्य भाग में वायु पूरित करते समय पसलियाँ, छाती की अस्थियां, छाती और छाती के ऊपर के भाग की हड्डियां आगे निकालकर वायु पूरित करनी चाहिए। इससे फेफड़ों के मध्य भाग तथा ऊपर के भाग में वायु पूर्णतया भर जायगी। ऊपर के अन्तिम भाग में वायु पूरित होते समय उदर के नीचे का भाग कुछ अंशों में सङ्कुचित होगा।

वायु पूरित करने की उपर्युक्त क्रिया, बाह्य दृष्टि से देखने पर, ऐसी जान पड़ती है कि जैसे तीन-चार बार ठहरकर श्वास-ग्रहण की क्रिया की गई हो। परन्तु वास्तविक तौर से वह ऐसी नहीं है। वायु पूरित करने का कार्य, बिना किसी प्रकार से रुके, एक समान गति से, चलता है, तभी उदर से लेकर कंठ तक के सब अवयव ठीक तौर से विकसित होते हैं। यदि कोई मनुष्य वायु पूरित करते समय रुक जाता हो, तो उसे एक समान गति से वायु पूरित करने का प्रयत्न करना चाहिये। आरम्भ में कुछ कठिनता प्रतीत होती है; परन्तु प्रयत्न जारी रखने से कुछ दिनों में एक समान गति से वायु पूरित करने का अभ्यास हो जाता है। इस प्रकार वायु पूरित करने में कम से कम तीन, और अधिक से अधिक ५, सेकंड लगाना बस होगा। फेफड़े वायु से पूर्णतया भर जाने के बाद लगभग दस सेकंड तक वायु भीतर ही रोक रखना चाहिये। फिर छाती को स्थिर रखकर धीरे धीरे

एक समान गति से वायु बाहर निकाल देना चाहिये। वायु जैसे जैसे बाहर निकलती जाय, वैसे वैसे उदर के भाग को क्र संकुचित करते जाना और ऊपर के भाग ऊँचे करते जा चाहियें। वायु पूर्ण रीति से बाहर निकल जाने पर उदर व छाती को शिथिल कर लेना चाहिये। वायु अन्दर पूरित करने यदि तीन सेकंड लगाये हों तो बाहर निकालने में लगभग सेकंड लगाना चाहिये—अर्थात् पूरने से निकालने में लगभ दुगुना समय लगाना चाहिये। अभ्यास पड़ जाने पर यह पूरक रेचक और कुंभक सरलतापूर्वक होने लग जाता है—फिर जिस प्रकार सितार बजानेवाला बातें भी करता जाता है और उसकी अँगुलियां सितार के पड़दों पर ठीक ठीक अपने आप फिरती जाती हैं, इसी प्रकार चाहे जैसे कार्यों में रहने पर भी मनुष्य की श्वसन-क्रिया, अभ्यास के अनुस अपने आप ही चलती रहती है।

यह विधि पूर्वोक्त तीनों प्रकार की विधियों का संयोगीक है। इसमें फेफड़ों के सभी विभाग वायु से पूर्णतया भर जाते और छाती संपूर्ण रूप से विकसित हो जाती है। इस विधि पूरक के अन्त में कन्धों को प्रसंगानुसार साधारण तौर पर उ उठाना हितकारक है; क्योंकि इससे हँसली की हड्डी ऊँची हो जा है; और इससे दाहिने फेफड़े के ऊपर के भाग में वायु अच्छ तरह से जाती है। दाहिने फेफड़े के ऊपर के भाग में ही विशे कर क्षय रोग के उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है। अतए

स स्थान में यथोचित रीति से वायु का प्रवेश होते रहने से क्षय ेग से मनुष्य की रक्षा हो सकती है।

अगले परिच्छेदों में लिखी जाने वाली अनेक श्वसन-क्रियाओं का वास्तविक लाभ प्राप्त करने के लिये इस श्वसन-क्रिया का अभ्यास यत्नपूर्वक करना चाहिये। इसमें परिश्रम, धैर्य्य, और समय की आवश्यकता है। दो-चार दिन के अभ्यास से सिद्धि की आशा रखना व्यर्थ है। यह क्रिया प्राणायाम की सब क्रियाओं का मूल है, और मूल के बिना ऊपर की इमारत खड़ी कैसे हो सकती है। प्राणायाम की पूर्ण सिद्धि के लाभ वाणी के द्वारा वर्णन नहीं किये जा सकते हैं; परन्तु प्रारम्भिक क्रियाओं में यदि प्रमाद अथवा उदासीनता दिखलाई जायगी, तो पूर्ण सिद्धि नहीं हो सकेगी। इसलिये प्रयत्न करने में आलस्य न करना चाहिए— इसी विधि के अनुसार दिन भर श्वसन-क्रिया करना चाहिये, ऐसा कोई बन्धन नहीं है। प्रारम्भ में प्रातःकाल, दोपहर और शाम को पांच पांच प्राणायाम इस प्रकार से करना चाहिये। फिर अभ्यास बढ़ जाने पर दस दस और बीस बीस तक कर सकते हैं। जिनको विशेष समय मिलता हो, उन्हें एक ही बार में कम से कम चालीस और अधिक से अधिक अस्सी प्राणायाम करना चाहिये। खुली हवा में चलते चलते भी यह प्राणायाम किया जा सकता है। दिन भर में किसी समय भी ऐसे दो-चार प्राणायाम कर लेना बहुत लाभ-दायक है।

स्वास्थ्य सुधारने के लिये इस क्रिया में संकल्प-शक्ति के संयोग का भी विधान है। उसकी विधि इस प्रकार है :—

खूब श्रद्धापूर्वक यह संकल्प करो कि "इस सुखमय संसार में दसों दिशाओं में एक 'प्रबल आरोग्यदायक तत्व' व्याप्त है।" फिर वायु फेफड़ों में पूरित करते समय ऐसा ख़याल बांधो कि वही आरोग्यदायक तत्व अब मेरे शरीर के अन्दर बहुत बड़े परिमाण में प्रवेश कर रहा है।" इसके बाद वायु को रोककर कुम्भक करते समय ऐसा दृढ़ विचार करो कि "वही आरोग्यतामय तत्व शरीर के प्रत्येक अणु में व्याप्त होकर अब मेरे प्रत्येक अवयव को नीरोग और बलवान कर रहा है।" अन्त में वायु बाहर निकालते समय ऐसा संकल्प दृढ़ता-पूर्वक अपने मन में लाओ कि "अब मेरे शरीर से रोग-भाव के समस्त परमाणु बाहर निकले जा रहे हैं।"

आरोग्यता के सिवाय सतोगुण, अध्यात्म-शक्ति और ज्ञान या ऐसे ही किसी दैवी सामर्थ्य की कल्पना करने से उसकी भी वृद्धि पर्याप्त रूप से हो सकती है। आध्यात्मिक शक्ति बढ़ाने के लिये इस प्राणायाम के साथ प्रणव या अपने इष्टमंत्र का जप करना चाहिये।

मंत्र और संकल्पशक्ति के साथ यह प्राणायाम करने से पूर्ण रूप से आत्मविजय होता है; और शरीर में दिव्य तेज झलकने लगता है।

वास्तविक श्वास-प्रश्वास का शरीर पर प्रभाव

वास्तविक श्वसन-क्रिया के अनुपम लाभों का जितना वर्णन किया जाय, कम है। गत परिच्छेद में इस विधि के लाभों का कुछ वर्णन किया गया है। फिर भी इस परिच्छेद में स्वतंत्र रूप से हम इस विषय का और भी विवेचन करते हैं, जिससे श्वास-प्रश्वास की इस विधि के विषय में हमारे पाठकों को अधिक से अधिक जानकारी हो जाय; और इसका साधन करने में उनको समुचित रूप से उत्साह हो।

वास्तविक श्वसन-क्रिया प्रतिदिन यथार्थ-विधि से करनेवाले स्त्री-पुरुषों को श्वास, कास, क्षय; और फेफड़ों से सम्बन्ध रखनेवाले रोग नहीं होते हैं; और कदाचित् इन रोगों में से कोई रोग, क्रिया प्रारम्भ करने के पहिले, यदि शरीर में होता है तो वह इस श्वसनक्रिया से दूर हो जाता है। श्वास-नलिका और फेफड़ों की निर्बलता से, अथवा शीतल वायु लग जाने से, अनेक मनुष्यों को जुकाम हो जाता है। परन्तु इस क्रिया के करनेवाले मनुष्य इससे बचे रहते हैं। श्वास के द्वारा प्राणवायु अल्प परिमाण में ग्रहण करने से शरीर क्षीण हो जाता है; और क्षीण-शरीरवाले मनुष्यों को ही क्षय रोग होता है। जिस प्रकार निर्बल पशुओं पर

'क्षय' इत्यादि अनेक प्रकार के जन्तु पैठकर उन्हें सताते हैं, इ
प्रकार क्षीण-शरीरवाले मनुष्यों के प्रायः अनेक रोगों के आक्रम
होते हैं। अवास्तविक श्वसनक्रिया में फेफड़ों का अधिकांश भा
क्रियात्मक रूप में न रहने के कारण शून्य पड़ा रहता है, क्यों
इसी भाग में क्षय इत्यादि रोगों के जन्तु अपना अधिकार जम
कर क्रमशः परवरिश पाते रहते हैं। इसके विरुद्ध वास्तवि
श्वसनक्रिया में फेफड़े का प्रत्येक भाग क्रियात्मक अवस्था में
रहता है। अतएव जिस प्रकार बहते हुए जल में जन्तु पैदा नहीं
हो सकते हैं, उसी प्रकार क्रियात्मक फेफड़ों के किसी भाग में भी
रोग के जन्तुओं की उत्पत्ति नहीं हो सकती है।

क्षयरोगवाले मनुष्य की छाती संकुचित रहती है,
छाती के संकोच का कारण अवास्तविक श्वसन-क्रिया ही
अवास्तविक श्वसन-क्रिया से छाती चौड़ी और मजबूत नहीं
सकती है। पूर्वोक्त प्रकार से वास्तविक श्वसन-क्रिया करनेवा
की छाती विकसित होकर यथेष्ट परिमाण में चौड़ी हो जा
है। इसलिये दुर्बल और क्षीणकाय मनुष्यों को स्वास्थ्य औ
दीर्घजीवन प्राप्त करने के लिये गत परिच्छेद में लिखी हुई वास्त
विक श्वसन-क्रिया के द्वारा अपने सीने का यथेच्छ विकास क
लेना चाहिये।

श्लेष्मा या जुकाम का पूर्वरूप प्रदर्शित होते ही दस मिन
तक वास्तविक श्वसनक्रिया वेगपूर्वक करने से जुकाम रुक जात
है। केवल एक दिन निराहार रहने से और दिन भर में तीन-चार

ार वास्तविक श्वसन-क्रिया,—पूरक, रेचक और कुंभक—करने से
हा भयंकर जुकाम भी आराम हो जाता है। कठोर शीत ऋतु
के दिनों में जिन मनुष्यों के हाथ-पैर अकड़ जाते हैं, अथवा
जिनको जाड़े से बहुत अधिक कष्ट होता हो, वे यदि थोड़ी देर भी
वास्तविक श्वसनक्रिया से काम लें, तो उनके शरीर में यथेष्ट
उष्णता आ जाती है।

फेफड़ों में शुद्ध वायु जितने अधिक परिमाण में जाती है,
रक्त उतने ही अधिक परिमाण में शुद्ध होता है। इसी प्रकार शुद्ध
हवा का प्रवेश यदि अल्प परिमाण में होता है, तो रक्त भी अशुद्ध
और नाना प्रकार के विकारों से परिपूर्ण रहता है। अशुद्ध रक्त
से शरीर को वास्तविक पोषण नहीं मिलती है, जिससे वह दुर्बल
और क्षीण हो जाता है। रक्त में रहनेवाले विकार से शरीर का
अधिकांश भाग विषमय हो जाता है। मनुष्य जाति के अनेक
रोगों का प्रधान कारण यही विष है। अनेक वर्षों से संचित इस
विष को शरीर से बाहर निकालकर रक्त को शुद्ध और उत्तम
बनाने का सब से सरल और बहुमूल्य उपाय वास्तविक
श्वसन-क्रिया ही है।

जठर और पचन क्रिया करनेवाले अन्य अवयवों को भी
अवास्तविक श्वसनक्रिया से बहुत हानि पहुँचती है; क्योंकि शरीर
में वायु अल्प परिमाण में जाने से इन अवयवों को बहुत कम
पोषण मिलता है; और इस हानि का परिणाम अन्त में बहुत ही
भयानक होता है। क्योंकि आहार को पचाकर रुधिर बनाने

और उसके द्वारा समस्त शरीर का पोषण करने के लिये रक्त आक्सिजन मिलना चाहिये; परन्तु अवास्तविक श्वसन-क्रिया आक्सिजन नहीं मिलता। इससे न तो आहार पचता है; और न रक्त शुद्ध होता है। परिणाम यह होता है कि धीरे-धीरे अन्न से अरुचि हो जाती है, शरीर दुर्बल हो जाता है, शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं; और अन्त में कोई भयंकर रोग हो जाने से मृत्यु हो जाती है।

अवास्तविक श्वसन-क्रिया से ज्ञान-तंतुओं के व्यूह की भी ऐसी ही दुर्दशा होती है। मस्तिष्क, पृष्ठ-रज्जु, और षट्चक्रों को जब रुधिर के द्वारा ठीक-ठीक पोषण नहीं मिलता तब ये दुर्बल हो जाते हैं; और अपने कर्तव्यों का पालन समुचित रीति से नहीं कर सकते हैं। अतएव अवास्तविक श्वसन-क्रिया से ज्ञान-तंतु-सम्बन्धी अनेक रोगों के पैदा होने की सम्भावना रहती है।

अवास्तविक श्वसन-क्रिया से जननेन्द्रिय भी दुर्बल हो जाती है; और जननेन्द्रिय तथा समस्त शरीर का इतना निकट-सम्बन्ध है कि जननेन्द्रिय के दुर्बल होते ही सारा शरीर दुर्बल हो जाता है।

वास्तविक श्वसनक्रिया से जननेन्द्रिय बलवान् और चैतन्य-मय होती है। ऐसी अवस्था में समस्त शरीर में शक्ति का अनुभव होता है। इससे यह न समझ लेना चाहिये कि वास्तविक श्वसनक्रिया से विषय-वासना की वृद्धि होती है। नहीं, वास्तविक श्वसन-क्रिया से विषय-वासना पर अंकुश प्राप्त होता

है। मन को वशीभूत करने के लिये यौगिक शास्त्रों ने प्राणायाम का ही विधान किया है; और प्राणायाम से यदि आरोग्यता बढ़ने के साथ ही साथ विषय-वासना भी बढ़ती, तो योगशास्त्र प्राणायाम के साधन का उपदेश कभी न करता। क्योंकि योग-शास्त्र का तो यह प्रधान लक्ष्य है कि ब्रह्मचर्य का समुचित रूप से पालन करने के बाद लोग गृहस्थ-आश्रम में प्रवेश करें और फिर गृहस्थधर्म का पालन करते हुए भी नियमानुसार ब्रह्मचर्य से सदैव वीर्य की रक्षा करते रहें।

शरीर की रोगमय अवस्था में ही सब प्रकार के विकारों के उत्पन्न होने और बढ़ने का क्षेत्र तैयार रहता है। इन्द्रियों की निरोगावस्था विकारों की उत्पादक नहीं; प्रत्युत इन्द्रियों की रोगमय अवस्था ही विकारों की उत्पादक है। शारीरिक, मानसिक, इन्द्रिय-सम्बन्धी तथा अन्य आन्तरिक तत्वों की वास्तविक आरोग्यता का अनुभव करनेवाले योगियों में विकारों का एकदम अभाव रहता है। इसलिये जननेन्द्रिय की आरोग्य-पूर्ण अवस्था में विषयवासना बढ़ने का अनुमान करना भ्रम है।

वीर्य-विकार, प्रमेह, नपुंसकता इत्यादि से पीड़ित मनुष्य यदि कुछ दिनों तक वास्तविक श्वसनक्रिया का अभ्यास करें, तो इनकी सब व्याधियां नष्ट हो सकती हैं। इसके सिवाय और भी अनेक शारीरिक और मानसिक लाभ हो सकते हैं। वीर्य-सुधारक तथा वीर्य-वर्धक औषधियों से निराश हुए मनुष्य, वास्तविक श्वसन-क्रिया से, पूर्ण आरोग्य सम्पादन कर सकते हैं।

विषय-वासना पर अंकुश प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाले मनुष्य को भी सत्वर सफलता प्राप्त करने के लिये वास्तविक श्वसनक्रिया शुरू कर देनी चाहिये।

वास्तविक श्वसनक्रिया में, फेफड़ों में वायु पूर्णतया भरने के लिये, जब दीर्घ श्वास ग्रहण किया जाता है। तब "उरोदरस्तर" (Diaphragm) के स्नायु संकुचित होकर यकृत, जठर, और उस स्थान के अन्य अवयवों पर साधारण सा दबाव डालते हैं। प्रश्वास के समय यह दबाव पुनः उठ जाता है; और श्वास ग्रहण करते समय पुनः पड़ता है। इस प्रकार नियमित रीति से यह दबाव की क्रिया बारबार होते रहने से यकृत इत्यादि अवयव शक्तिशाली होते हैं, और अपना व्यापार योग्य रीति से करने लगते हैं।

अनेक मनुष्य शरीर को बलवान बनाने के लिये व्यायाम करने पर अधिक ध्यान देते हैं। व्यायाम करना अवश्य ही लाभजनक है, परन्तु उससे केवल बाह्य अवयव और स्नायु ही बढ़ते हैं। आन्तरिक अवयवों का व्यायाम उससे नहीं होता है। वास्तव में बाहरी और भीतरी दोनों अवयवों का व्यायाम होते रहने से ही पूर्ण आरोग्यता प्राप्त होती है। इसलिये भीतरी अवयवों को व्यायाम प्रदान करनेवाली यह वास्तविक श्वसन-क्रिया मनुष्य के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

वास्तविक श्वसन-क्रिया, किसी प्रकार के खर्च के बिना, केवल घर में बैठे बैठे हो जाया करती है। इसीलिये शायद इस

मुख में होनेवाली क्रिया की ओर लोगों का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित नहीं हुआ है। हां, सौ रुपये तोले की मात्रा के समान यदि यह कोई मूल्यवान दवाई होती, तो अवश्य ही लोग उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करते। आप यदि रोगियों को, उनका रोग निवारण करने के लिये, कोई दवाई बतलावेंगे तो वे आपकी बात को ध्यानपूर्वक सुनेंगे; परन्तु दीर्घ श्वसन-क्रिया के द्वारा वास्तविक तौर से श्वास ग्रहण करने के लिये यदि आप उन्हें उपदेश दें, तो बिना सुने ही चले जायेंगे। आरोग्यता के महासागर की बड़ी बड़ी लहरें, लोगों को आरोग्य-स्नान कराने के लिये, उनके मकानों की खिड़कियों और दरवाजों से निरन्तर आती रहती हैं; परन्तु मनुष्य अज्ञानता से उनका अनादर करके उन्हें ग्रहण नहीं करता है; और रोगों का शिकार होकर उनकी मांद में सड़ता रहता है। आह! यह कैसे दुर्भाग्य की बात है!

दसवां अध्याय

प्राणायाम का मूल स्वरूप

भगवान् ने हमारे शरीर की रचना ऐसी की है कि ह
रात-दिन सोते-जागते प्राणायाम ही किया करते हैं—हम श्वास
खींचते हैं, तब 'पूरक' होता है; और जब प्रश्वास छोड़ते हैं
तब 'रेचक' होता है, और बाहर से खींचने और भीतर से
छोड़ने में—बीच में—जो कुछ क्षण की रुकावट होती है,इसको
"बाह्य कुम्भक" और "आभ्यन्तर कुम्भक" कहना चाहिए
यह 'पूरक', 'रेचक' और 'कुम्भक' की प्राणायाम-क्रिया बराबर
हमारे शरीर में जारी रहती है; पर हम इसको ज्ञान के
नहीं करते हैं—इससे आध्यात्मिक और भौतिक स्वास्थ्य के
लाभ नहीं उठाते। योगी लोग इस स्वाभाविक क्रिया
यथार्थ ज्ञान, अपनी साधना और अभ्यास के द्वारा, प्राण का
अपने शरीर और आत्मा का पूर्ण विकास करते हैं।

महर्षि पतंजलि ने अपने योगशास्त्र में अष्टाङ्ग योग
साधन मनुष्य के सर्वाङ्गपूर्ण विकास के लिए बतलाया है।
आठ अंग इस प्रकार हैं:—(१) यम (२) नियम (३) आसन
(४) प्राणायाम (५) प्रत्याहार (६) धारणा (७) ध्यान और (८)
समाधि। इनमें से पहले चार साधनों को "बहिरंग-योग-साधन"

और पिछले चार साधनों को "अन्तरंग-योग-साधन" कहते हैं। बहिरंग साधनों में मनुष्य की बाहरी चेष्टाएं दिखाई देती हैं; परन्तु भीतरी साधनों में मनुष्य बिलकुल शान्त, आत्मा में लीन रहने का प्रयत्न करता है। मनुष्य के पूर्ण विकास के लिए इन आठों साधनों की आवश्यकता है।

यम पांच हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय (दूसरे की वस्तु की इच्छा न करना), ब्रह्मचर्य (दूसरे की, और अपनी स्त्री में भी, काम-वासना या व्यभिचार न रखना), अपरिग्रह अर्थात् सब प्रकार का लोभ-लालच छोड़कर त्याग धारण करना। नियम भी पाँच ही हैं—शौच, सन्तोष, तप (सत्कार्यों में कष्ट सहना), स्वाध्याय और ईश्वरभक्ति। इन दसों गुणों का मनुष्य को हर हालत में अभ्यास करते रहना चाहिए; क्योंकि मनुष्यता का सम्पूर्ण विकास होने के लिए यही मूल साधन हैं।

योग का तीसरा अंग आसन है। आसन बहुत से हैं; और उनका उद्देश्य शरीर में सुख, शान्ति और आरोग्य उत्पन्न करना है। आसनों के विषय में हिन्दी में कई ग्रन्थ निकल चुके हैं; परन्तु पतंजलि मुनि ने इसका इतना ही अर्थ लिया है कि जिस आसन से मनुष्य सुखपूर्वक, अधिक से अधिक समय तक, स्थिर और एकाग्रचित्त होकर बैठा या [illegible], वही पक्का आसन है। [illegible] भगवान् कृष्ण ने [illegible]

चित्र नं० ६

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥
गी० ६–१३

अर्थात् पीठ, सिर, गर्दन, इत्यादि, शरीर का भाग एक स
में अचल स्थिर रखें; और, इधर-उधर न देखकर सिर्फ अप

नाक की नोक पर ही दृष्टि रखे—फिर चाहे खड़ा हो, चाहे बैठा हो; और चाहे चलता-फिरता हो। एक सीधी रेखा में शरीर के रहने से फेफड़े दबते नहीं हैं। इससे हवा अन्दर सारे शरीर में अपना पूरा पूरा प्रभाव डालती है। वायु की प्राणशक्ति हमारे शरीर में खपनी चाहिए। इस लिए प्राण के यथेच्छ रूप से अन्दर दौड़ने के लिए मार्ग सरल होना चाहिए। सोनार लोगों की फुँकनी सीधी होती है, तभी उससे यथेच्छ वायु पहुँचती है। इसी प्रकार शरीर के सरल रेखा में रहने से ही उसके भीतर की सब बारीक नलियों में प्राणवायु यथेच्छ रूप से दौड़ जाती है। सिर्फ प्राणायाम के ही समय में नहीं; किन्तु उठते-बैठते, चलते-फिरते, लिखते-पढ़ते और सोते समय भी शरीर को एक सरल रेखा में ही रखने की आदत डालनी चाहिए; क्योंकि स्वाभाविक प्राणायाम तो मनुष्य के शरीर में चौबीसों घंटे होता ही रहता है।

अस्तु। किसी भी आसन से आप बैठें, या खड़े हों, आसन का उपर्युक्त सिद्धान्त अवश्य ध्यान में रखें। योग के इस तीसरे अंग का हमारे प्रस्तुत विषय, अर्थात् चौथे अंग—प्राणायाम—से विशेष सम्बन्ध है।

हम ऊपर कह चुके हैं कि प्राणायाम की सम्पूर्ण क्रियाएं पूरक, रेचक और कुम्भक इन्हीं तीन क्रियाओं पर निर्भर हैं। श्वास और प्रश्वास की गतियों को रोकने और बढ़ाने का ही नाम प्राणायाम है। जैसे अत्यन्त वेग से वमन-द्वारा अन्न-जल बाहर निकल आता है, उसी प्रकार भीतर की अपवित्र वायु को

यत्नपूर्वक बाहर फेंककर बाहर ही रोक दें; और जब बहुत घब
हट मालूम होने लगे, तब धीरे धीरे भीतर प्राणवायु को
इसी प्रकार यथाशक्ति और यथेच्छ रूप से प्राणायाम करें।

वायु को अन्दर पूरना 'पूरक' है, बाहर रेचन कर दे
'रेचक' है; और एक जगह स्तब्ध कर देना 'कुम्भक' है
योगशास्त्र की परिभाषा में इन्हीं तीनों क्रियाओं के आधार
कई भेद किये गये हैं। प्रश्वासपूर्वक वायु को बाहर रोक
बाह्यवृत्ति और प्रश्वासपूर्वक भीतर रोकना अभ्यन्तरवृत्ति और
वायु को जहां का तहां रोक देना स्तम्भवृत्ति है। प्राणायाम की
यही तीन वृत्तियां मुख्य हैं। इनमें देश, काल और संख्या के
अनुसार प्राणायाम दीर्घ या सूक्ष्म हो जाता है*। इन
वृत्तियों के अतिरिक्त प्राणायाम की एक चौथी वृत्ति भी है।
का नाम है—"बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी वृत्ति"। इनका सुला
इस प्रकार किया जा सकता है:—

जब 'अपान' (गन्दी) वायु को प्रश्वास के द्वारा बाह
निकालकर हम उसे बाहर ही रोक देते हैं, तब इसको बा
प्राणायाम कहते हैं; और जब बाहर से प्राणवायु को अन्द
ग्रहण करके अन्दर ही रोक देते हैं, तब यह अभ्यन्तर प्राणायाम
होता है। अब तीसरी वृत्ति यह है कि न तो हम प्रश्वास के

* न्यूनाधिक दूर से वायु के प्रवाह को खींचना और बाहर छोड़ना ही 'देश' है। न्यूनाधिक समय तक पूरक, रेचक, कुम्भक करना 'काल' है; और जितनी बार ये तीनों क्रियायें की जायँ, वह 'संख्या' है।

बाहर निकालें; और न श्वास को अन्दर खींचें; बल्कि जहाँ का तहाँ ही रोक देवें। इसमें श्वासप्रश्वास की क्रिया ही बन्द हो जाती है। यह तीसरा स्तम्भवृत्ति प्राणायाम है। अब चौथी वृत्ति लीजिए। जब थोड़ी थोड़ी वायु बाहर निकालकर रोकें; और थोड़ी थोड़ी अन्दर लेकर रोकें और फिर बार बार यत्नपूर्वक अन्दर और बाहर की दोनों गतियों को रोकते जावें, तब इसे "बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी" प्राणायाम कहेंगे। बस,प्राणायाम का कुल मूलसिद्धान्त इतना ही है,जो महर्षि पतञ्जलि ने अपने योगदर्शन में बतलाया है। अब इसी मूलसिद्धान्त को लेकर अनेक प्रकार के प्राणायाम, अनेक उद्देश्यों को लेकर, हमारे ऋषियों ने निकाले हैं; और अब आजकल पश्चिमी वैज्ञानिकों ने भी इसी आधार पर श्वासप्रश्वास की अनेक कसरतें बतलाई हैं। इस पुस्तक में हमने पूर्वीय और पश्चिमीय दोनों प्रकार के बहुत से प्राणायाम के व्यायाम अपने अनुभव से दिये हैं। परन्तु हमारी यह विनम्र सूचना है कि अभ्यासियों को इस अध्याय में दिये हुए मूल प्राणायाम का ही पहले खूब समझ-बूझ कर अभ्यास करना चाहिए। नवीन अभ्यासियों को पूरक सोलह सेकंड से शुरू करके क्रमशः इसको बढ़ाते जाना चाहिए। इसका अभ्यास हो जाने पर फिर पूरक सात, कुम्भक चौदह और रेचक सात सेकंड से शुरू करके क्रमशः कुम्भक को ही बढ़ाने का अभ्यास करना चाहिए; क्योंकि प्राणायाम में कुम्भक बड़े महत्व की चीज़ है। इसी पर योगशास्त्र का सारा आधार है

ग्यारहवाँ अध्याय

मल-शोधक लोम-विलोम-प्राणायाम

योगी-कुल-मुकुट-मणि श्रीनृसिंहाचार्य्य जी 'सिद्धान्तसिं' में इस प्राणायाम के सम्बन्ध में निम्नलिखित विचार प्रदर्शि करते हैं :—

नाड़ियों का शुद्ध करनेवाला मल-शोधक लोम-विलोम प्राणायाम वास्तव में सब से मुख्य है। पद्मासन करके प्राणवा को बाईं चन्द्रनाड़ी, जिसे इड़ा कहते हैं, उसके द्वारा खींचना, यथाशक्ति धारण करके, अर्थात् कुंभक करके, दाहिनी सूर्य्यना जिसे पिंगला कहते हैं, उसके द्वारा रेचक करना। बाहर की व को क्रमपूर्वक मंदगति से भीतर खींचना पूरक कहलाता है। प्रा को रोक रखना कुंभक कहलाता है, तथा धारण किये हुए वा को धीरे धीरे क्रम से छोड़ना "रेचक" है। इस मल-शोध प्राणायाम का एक खास नियम ध्यान में रखने योग्य यह है कि प्रथम इड़ा से पूरक करके पिंगला से रेचक करना चाहिये, पश्चात् पिंगला से ही पूरक करके इड़ा से रेचक करना चाहिये। तात्प यह कि जिस नाड़ी से रेचक किया जाय, उसी नाड़ी से फि पूरक करना चाहिये और जिस नाड़ी से पूरक किया जाय, उ नाड़ी से रेचक नहीं करना चाहिये। अर्थात् प्रथम बाईं से पूर

रना चाहिये और दाहिनी से रेचक; फिर दाहिनी से पूरक और ाईं से रेचक। इस तरह के क्रम से, एक के बाद एक, करना ाहिये। बीच बीच में शक्ति के अनुसार कुंभक भी करते हना चाहिये। इस तरह के प्राणायाम का प्रथम से ही—यम, नेयम और आसन, इन तीनों अंगों की सिद्धि करने के बाद—अधिकारी साधक नित्य अभ्यास करे, तो तीन मास के पश्चात् इस साधक को नाड़ी शुद्ध होती है। न्यून अभ्यास करनेवाले के अधिक समय भी लगता है। आसन की सिद्धि हुए बिना जो प्राणायाम को सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं उन्हें रोगोत्पत्ति होने की सम्भावना रहती है। इसलिये अनुभवी प्रवर्तक के बिना इस कार्य में बुद्धिमान पुरुषों को बिलकुल ही प्रयत्न नहीं करना चाहिये।

नासिका के जिस छिद्र से वायु भीतर खींची गई हो, उसी छिद्र से वायु बाहर न निकालना चाहिये, किन्तु दूसरे छिद्र से निकालना चाहिये; और फिर उसी छिद्र से वायु भीतर खींचकर प्रथम छिद्र से वायु को बाहर निकालना चाहिये। इस प्रकार के क्रम से पुनः पुनः करते रहना चाहिये। इसे "लोम-विलोम-पूरक-रेचक" कहते हैं। इस तरह के कुंभक-सहित लोम-विलोम-पूरक-रेचक से शरीर की अत्यन्त शुद्धि होती है। आरोग्यता सर्वोत्तम प्रकार से रक्षित रहती है।

लोम-विलोम प्राणायाम की यह विधि साधारण तौर से ही खोजी हुई नहीं है, किन्तु शरीर के नियमों का सूक्ष्म रीति से

अवलोकन करने के बाद अत्यन्त विचार और अनुभवपूर्व खोजी गई है। यह विधि प्राकृतिक-नियमानुसार होने के कारण शास्त्रीय योगविद्या के लिए खास कुञ्जी है।

प्रत्येक मनुष्य अपनी श्वास-प्रश्वास-क्रिया पर ध्यान रखकर अवलोकन करेगा तो उसे स्पष्ट ही मालूम हो जायगा कि कुछ समय तक उसकी वायु दाहिने स्वर द्वारा स्पष्टता से बह रही है; और उस समय बायां स्वर बन्द के समान है। फिर कुछ समय व्यतीत होने पर बायां स्वर खुल जाता है; और उसके द्वारा वायु स्पष्टता से बहने लगती है; और उस समय दाहिना स्वर स्वाभाविक ही बन्द हो जाता है। इस तरह किसी को घंटे घंटे में, या किसी को अल्प समय में—जैसी जिसकी प्रकृति होती है उसी के अनुसार—दाहिने-बायें छिद्र द्वारा वायु क्रम क्रम से स्पष्टतापूर्वक बहती रहती है। यह क्रम प्रतिदिन के चौबीसों घंटे, जागते सोते, चलता ही रहता है।

दाहिने छिद्र को योगशास्त्र में सूर्य्यनाड़ी अथवा पिंगला नाड़ी कहते हैं, और बायें छिद्र को चन्द्रनाड़ी अथवा इड़ा नाड़ी कहते हैं। इस तरह के नाम रखने का यह हेतु है कि दाहिने छिद्र द्वारा शरीर में प्रवेश करनेवाली वायु (सूर्य्य का स्वभाव) उष्णता को शरीर में पैदा करती है, और बायें छिद्र द्वारा प्रवेश करनेवाली वायु (चन्द्र का स्वभाव) शीतलता को शरीर में पैदा करती है। पाश्चात्य विज्ञान की भाषा में कहें, तो दाहिने छिद्र द्वारा ग्रहण की हुई वायु से धन-तनु की दाहिनी ओर मध्य विद्युत का प्रवा

ositive electrical current) बहता है, और बायें छिद्र द्वारा
ण की हुई वायु से पृष्ठ-रज्जु की बाईं और निर्बल
द्युत् का प्रवाह (negative electrical current) बहता है।
शास्त्र की परिभाषा में कहें तो दाहिने छिद्र द्वारा ग्रहण की हुई
यु से पुरुषतत्व का शरीर में अधिक संचय होता है, और बायें
द्र द्वारा ग्रहण की हुई वायु से स्त्रीतत्व का शरीर में अधिक
चय होता है।

सूर्यतत्व और चन्द्रतत्व, अथवा सबल और निर्बल विद्युत-
वाह, अथवा पुरुषतत्व और स्त्रीतत्व, शरीर में जिस परिमाण में
ंचित होते हैं उसी परिमाण में शरीर में आरोग्यता का आधार
हता है। जिनके शरीर में सूर्यतत्व अधिक और चन्द्रतत्व कम
होता है उन्हें उष्णता और पित्त से सम्बन्ध रखनेवाली नाना प्रकार
की व्याधियां सताती हैं। इसी प्रकार जिनके शरीर में चन्द्रतत्व
अधिक और सूर्यतत्व कम होता है उन्हें शीत से सम्बन्ध रखनेवाली
नाना प्रकार की व्याधियां सताती हैं। दोनों तत्व शरीर में जब
समानता से व्याप्त रहते हैं—अर्थात् दोनों में से कोई भी प्रधान
नहीं होता है—तब मनुष्य सर्वोत्तम आरोग्यता का अनुभव करता
है। यह प्राकृतिक अटल नियम है। चन्द्रतत्व और सूर्यतत्व को
शरीर में समानता से संचित रखने के लिये ही नासिका का
दाहिना और बायां छिद्र प्राकृतिक रीति से क्रमशः समय समय
पर खुलता और बन्द होता है; और इन्हीं के द्वारा शरीर में क्रम
क्रम से चन्द्रतत्व और सूर्यतत्व का संचय होता रहता है।

इड़ा और पिंगला नाड़ी के उपर्युक्त स्वाभाविक क्रम में गड़बड़ी होने से ही रोगोत्पत्ति होती है। रोगी मनुष्यों का यह क्रम योग्य उपचार द्वारा यदि नियमित कर दिया जाय, या वे लोम-विलोम प्राणायाम प्रति दिन नियमित समय पर, नियमित ढंग से, करते रहें तो उनका रोग शीघ्र ही दूर हो सकता है।

इतने विवेचन से यह स्पष्ट हो जायगा कि लोम-विलोम प्राणायाम की प्रणाली प्राचीन ऋषि-मुनियों ने, प्रकृतिराज के गूढ़ नियमों का विचारपूर्वक अभ्यास करके अनुभवपूर्वक खोज निकाली है।

लोम-विलोम प्राणायाम में चन्द्रतत्व और सूर्यतत्व शरीर में समान रीति से संचित होते हैं; क्योंकि इस प्राणायाम में इड़ा द्वारा जितनी बार जितनी वायु ग्रहण की जाती है उतनी ही बार उतनी वायु पिंगला द्वारा भी ग्रहण की जाती है।

शंका हो सकती है कि इड़ा-द्वारा चन्द्रतत्व का और पिंगला द्वारा सूर्यतत्व का शरीर में सञ्चय होता है, इसका क्या प्रमाण? इसके लिये इतना ही कहना बस होगा कि आप दो-चार दिन अपनी नासिका का बायां या दाहिना स्वर रुई के फाहे या कपड़े से बन्द रखें, और केवल एक ही स्वर खुला रखकर श्वास-प्रश्वास की क्रिया करें—ऐसा करने से आपको अपने शरीर में चन्द्रतत्व या सूर्यतत्व की प्रधानता होने से शीत या उष्णता का अनुभव स्वयं ही हो जायगा। यह प्रत्यक्ष प्रमाण है। करके देख लेना

केलिफोर्निया के मेडिकल कालेज के डाक्टर एटकिन्स ने
ाग द्वारा सिद्ध किया है कि जीवित मनुष्य के फेफड़े में विद्युत्
सबल और निर्बल प्रवाह चल रहा है। आर्यशास्त्रकारों ने
ुत् के इस दोनों प्रकार के प्रवाह को ही चन्द्रतत्व और सूर्यतत्व
म दिया है।

श्वास में जो प्राणवायु हम ग्रहण करते हैं उसमें चन्द्रतत्व और
र्यतत्व हैं। यही नहीं, बल्कि हमारे ऋषियों-मुनियों ने यह
ो सिद्ध कर दिया है कि इस सर्वव्यापी प्राणवायु में पांच प्रकार
अणु हैं; और अपनी न्यूनाधिक गति के अनुसार वे अलग
लग विभागों में विभाजित किये गये हैं। जिस प्रकार जल
त्व एक ही प्रकार का द्रव्य है; परन्तु भाफ में जल के अणुओं
े आन्दोलन अत्यन्त वेगवान होते हैं; जल में भाफ से कम
ेगवान होते हैं; और बर्फ में उससे भी कम। अतएव अलग
अलग वेग के कारण, एक ही जलतत्व भाफ, जल और बर्फ
के नाम से पहिचाना जाता है। इसी प्रकार प्राणतत्व एक
ही प्रकार का होते हुए भी, अणुओं के आन्दोलनों के अल्पाधिक
वेग के अनुसार, उसके भी पाँच विभाग किये गये हैं।
जिसमें आन्दोलनों का वेग बहुत अधिक परिमाण में होता है,
उसको आकाशतत्व कहते हैं। जिसमें इनसे कुछ कम वेग होता
है उसे वायुतत्व कहते हैं। उससे कम वेगवाले अणुओं को
ओजतत्व। उससे भी कम वेगवाले अणुओं को जलतत्व। और
सब से कम वेगवाले अणुओं को पृथ्वीतत्व कहते हैं। प्रत्येक

तत्व के अणुओं में कुछ सूर्यतत्व की प्रधानतावाले, और कुछ चन्द्रतत्व की प्रधानतावाले होते हैं। आरोग्यता की स्थिति में ये पांचों तत्व नियमानुसार शरीर में नियमित परिमाण में होते हैं; और जिस प्रकार शरीर में क्रम से सूर्यनाड़ी और चन्द्रनाड़ी की प्रधानता होती है उसी प्रकार इन पांचतत्वों में से प्रत्येक की क्रमशः नियमित समय तक प्रधानता रहती है। एक तत्व की प्रधानता दूसरे तत्व की अपेक्षा अधिक समय तक शरीर में रहने से रोगोत्पति की सम्भावना हो जाती है; और मनुष्य रोगी हुए बिना रहता ही नहीं है। क्योंकि रोगी शरीर में ही कोई तत्व तो अधिक परिमाण में और कोई तत्व अल्प परिमाण में होता है। भिन्न भिन्न विकारों के वशीभूत रहने के कारण (अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, शोक, और भय इत्यादि से) इन तत्वों के आन्दोलनों की गति में न्यूनाधिक भेद हो जाया करता है। क्रोध से शरीर में अग्नितत्व की प्रधानता, मोह से जलतत्व की प्रधानता, भय से पृथ्वीतत्व की प्रधानता—इसी प्रकार जिन जिन तत्वों का जिन जिन विकारों से सम्बन्ध रहता है, उन सभी तत्वों की प्रधानता उन विकारों के कारण हो जाया करती है; और यही कारण शरीर में रोगोत्पत्ति करते हैं। विकारों को जीतकर निर्विकार शांत वृत्ति रखना सुख और स्वास्थ्य के लिये कितना आवश्यक है, यह बात बुद्धिमान मनुष्य इतने विवेचन से स[हज] ही समझ सकते हैं। विकार ही इस प्रकार तत्वों की प्रधानता [में] परिवर्तन करके उनकी गति को विषम बनाते रहते हैं। हमार[े]

त्येक विचार, प्रत्येक शब्द, और प्रत्येक कार्य्य, तत्वों पर प्रभाव
ालकर उनकी प्रधानता में परिवर्तन करता है। इसलिये मन,
ाणी और शरीर की प्रत्येक क्रिया करते समय मनुष्य को
अत्यन्त सावधान रहना चाहिये।

प्राणवायु में उपर्युक्त पांचों तत्व रहते हैं। मनुष्य जब श्वसन-क्रिया के द्वारा प्राणवायु शरीर में ग्रहण करता है, तब शरीर में रहनेवाले ये पांचो तत्व पोषित होते हैं। आहार-विहार की अनियमितता से, या विकारों के वशीभूत होने से, शरीर में इन पांचों तत्वों में असमानता और विषमता पैदा हो जाती है। उसकी निवृत्ति के लिये ऋषियों, मुनियों और योगियों ने प्राणायाम की अनेक विधियां निश्चित की हैं; और प्रत्येक प्रकार के प्राणायाम के गुणों का वर्णन किया है। उक्त शारीरिक विषमता को दूर करने का सब से प्रधान साधन लोम-विलोम प्राणायाम है। लोम-विलोम प्राणायाम जिस प्रकार सूर्य-चन्द्र-नाड़ी को विषमावस्था को समस्थिति में ले आता है उसी प्रकार उक्त पांच तत्वों की विषमता को भी दूर कर देता है।

स्वरोदय का जिक्र करते हुए अकसर लोग कहा करते हैं कि दिन के समय मनुष्य की चन्द्रनाड़ी (स्वर) चलती रहे और रात्रि के समय सूर्य्यनाड़ी चले, तो वह मनुष्य दीर्घजीवी होता है। परन्तु इसका वास्तविक भाव यह नहीं है कि दिनभर चन्द्रनाड़ी और रातभर सूर्य्यनाड़ी चलती रहे। इन अनाड़ी लोगों के ... ार किया जाय, तो बहुत हानि उठानी

को अन्दर खींचो। फिर अनामिका और कनिष्ठिका अँगु
(अर्थात् चौथी और पांचवीं अँगुली) से नासिका का बायां छि
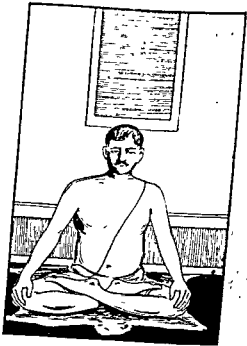
चित्र सं० १० पद्मासन

बन्द करो और वायु को इतनी देर भीतर ही रोके रहो जितनी दे
सोलह या चौबीस प्रणव का मानसिक उच्चार हो। इसके बा

नासिका के दाहिने छिद्र पर से अँगूठा उठाकर उस छिद्र के द्वारा वायु को धीरे धीरे इतने समय में बाहर निकालो कि आठ अथवा बारह प्रणव का मानसिक उचार हो। अँगुलियां बायें नासापुट पर वैसी की वैसी ही रखो; और उसी अवस्था में दाहने नासापुट से पूर्वोक्त प्रकार वायु पूरित करके उसी प्रकार रोको और बायें छिद्र के द्वारा उसी प्रकार बाहर निकाल दो। फिर बायें छिद्र से वायु पूरित करके रोको और दाहिने छिद्र से बाहर निकालो। इस प्रकार शक्ति के अनुसार बार बार करते रहो। थकावट मालूम होते ही क्रिया बन्द कर देनी चाहिये। निर्बल मनुष्यों को हठपूर्वक क्रिया न करनी चाहिये। जितनी देर रुक सके, सुख-पूर्वक रोकना चाहिये। यदि वायु बाहर निकलने में बरबस शीघ्रता हो जाय, तो समझना चाहिये कि शक्ति से अधिक बल खर्च हो गया है। अत्यन्त ही सरलता से, बिना किसी प्रकार की घबराहट के, पूरक, कुंभक, और रेचक होना चाहिये। किसी जानकार सज्जन के निरीक्षण में क्रिया करना सदैव विशेष हितकारी है। स्वतंत्र रीति से बिना समझे बूझे क्रिया करने से लाभ के बजाय हानि की अधिक सम्भावना है।

क्रिया करने का समय प्रातःकाल, दोपहर, और शाम को बहुत ही अच्छा है। परन्तु भोजन करने के बाद तीन घंटे तक किसी भी समय, और किसी भी अवस्था में, क्रिया नहीं करनी चाहिये। प्रारम्भ में बीस कुम्भक से अधिक कभी न करना

चाहिये। फिर बढ़ाते-बढ़ाते अस्सी तक बढ़ा लेना चाहिये। गुरु के आश्रय में समय का परिमाण भी योग्य रीति से बढ़ाते रहना चाहिये।

क्रम क्रम से विश्व-व्यापी प्राण के साथ ऐक्य-साधन करते समय योग-साधकों को अनुभव होने लगता है कि हमारी आत्मा और परमात्मा में कैसा अभेद भाव है; और हम अपने सामर्थ्य को कितना ऊँचा चढ़ा सकते हैं।

बारहवां अध्याय

प्राणायाम के सम्बन्ध से पंचतत्वों का विचार

पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि, और पवन, इन पांच तत्वों से सम्बन्ध रखनेवाले भिन्न भिन्न कारणों से जब शरीर में असमानता और विषमता पैदा हो जाती है, तब उसे लोम-विलोम-प्राणायाम दूर कर देता है। इस सम्बन्ध में साधारण सी सूचना पिछले परिच्छेद में की गई है। परन्तु तत्वों से सम्बन्ध रखनेवाला विषय अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसलिये इस परिच्छेद में इसी विषय पर विशेष प्रकाश डालना उचित समझा गया है।

विषमता ही सब प्रकार के रोगों और मानसिक अव्यवस्था का मूल कारण है; और समता सुदृढ़ स्वास्थ्य और मानसिक शान्ति का प्रधान हेतु है। विषम अवस्था में—फिर वह चाहे परिवार में, राज्य में, मनुष्यों में, पशुओं में, पंचतत्वात्मक शरीर में, या जड़ पदार्थों में या कहीं भी हो—सर्वत्र ही दुःख, अव्यवस्था, क्लेश, और विनाश उत्पन्न होता है; और समता की अवस्था में—अथवा एकता में—सर्वत्र ही सुख-शान्तिमय जीवन की सुदृढ़ और स्वास्थ्यपूर्ण अवस्था रहती है। इसलिये वास्तविक सुखोपभोग की इच्छा रखनेवालों को सभी अवस्थाओं में समता स्थापित करने का प्रयत्न करना चाहिये।

शरीर तथा मन के समस्त अणुओं में, तथा व्यापार मनुष्य यथोचित आहार-विहार से जब समता उत्पन्न करत और इसी प्रकार की दशा विश्व से सम्बन्ध रखनेवाले नियमों में सम्पादित कर लेता है—अर्थात् जब वह अन्त अविरोधात्मक स्थिति उत्पन्न कर लेता है, तभी वह वास्त सुख-शान्ति का अधिकारी हो सकता है। श्वासविज्ञान उसके द्वारा प्राणायाम का अभ्यास करने से ही अन्तर्बाह्य अ रोधात्मक अवस्था प्राप्त होती है; और इसलिए योग के इस अंग का अभ्यास प्रत्येक मनुष्य के लिये अनिवार्य आवश है। प्राणायाम का ऐसा असाधारण फल होने के कारण सूक्ष्मदर्शी योगियों और ऋषि-मुनियों ने हमारे लिए नित्यनै त्तिक कर्म में भी प्राणायाम की गणना प्रधान रूप से की अज्ञान की निःशेष निवृत्ति करने में, और स्वरूप का अपर साक्षात्कार करने में विधिपूर्वक किया गया प्राणायाम जित सहायक हो सकता है उतना सहायक अन्य कोई भी साधन न हो सकता।

प्राण ही शरीररूपी यंत्र का एक प्रधान चक्र है। प्राण य अपनी वास्तविक व्यवस्था के अन्दर सुचारु रूप से रहे, तो शरी के अन्दर रहनेवाले सभी चक्र सुव्यवस्थित रहते हैं; और य प्राणचक्र ही अव्यवस्थित हो जाता है, तो शरीर और उस अन्दर रहनेवाले सभी चक्रों में महान् अव्यवस्था उत्पन्न ह जाती है।

प्राण और इसके अन्दर रहनेवाले पांच तत्वों के नियमों से अनभिज्ञ रहने के कारण ही मनुष्य-जाति नाना प्रकार के दुःख भोग रही है। मनमाना आहार-विहार करने से, मनमाना बोलने और सोच-विचार करते रहने से प्राण और प्राण के अन्दर रहनेवाले पंचतत्व क्षुभित हो जाते हैं। उनके क्षुभित हो जाने का बड़ा विषम परिणाम इस मनुष्य-शरीर को भोगना पड़ता है। इसको, और इसके खास खास रहस्यों को, यदि मनुष्य-जाति समझ ले, तो अन्याय, क्रोध, लोभ, वैर, द्वेष और निर्दयता इत्यादि दुर्गुणों का शिकार होने से वह बच जावे। योग-साधक और तत्वदर्शी पुरुष इस प्रकार के विकारों से बहुत सावधान रहते हैं। इसका कारण यही है कि इन विकारों से उत्पन्न होनेवाले दुःखद परिणाम को वे जानते हैं; और अन्य मनुष्य नहीं जानते।

योगविद्या के अभ्यासियों को "यम-नियम" नामक योग के प्रारम्भिक अंगों का अत्यन्त दृढ़तापूर्वक पालन करना चाहिए। शरीर और मन में पञ्चतत्वों की समता रखने के लिए ही योग-शास्त्र में इनका विधान किया गया है। क्रोध, शोक, चिन्ता और इसी प्रकार के अन्य अवसरों पर प्राणायाम करने का आग्रह योगी लोग क्यों करते हैं? पञ्चतत्वों की समता को सिद्ध करने के लिए।

मानसिक अशान्ति के समय प्राणायाम करने से प्राण और पञ्चतत्वों में महान् विषमता पैदा हो जाती है। इससे लाभ के

बदले हानि होती है। इसलिये प्राणायाम करते समय मानसिक अवस्था बहुत ही शांत रखनी चाहिये।

पांचतत्व क्या हैं ? एक तत्व की न्यूनाधिक गति के भेद हैं। आकाशतत्व के अणुओं की गति, अथवा आन्दोलनें, सब से अधिक होते हैं। आकाशतत्व से कम गतिवाले आन्दोलन वायुतत्व के नाम से पुकारे जाते हैं। इसी प्रकार पृथ्वीतत्व के अणु अत्यन्त ही अल्प-गति-वाले होते हैं।

इन पांचों तत्वों का वर्णन योगशास्त्र के ज्ञाता इस प्रकार करते हैं—

१—आकाशतत्व

यह पांच तत्वों में सब से अधिक सूक्ष्म और सब से अधिक शुद्ध है। धारणा के समय योगी लोग तत्वों के प्रत्यक्ष दीखनेवाले रंगों से, आकृति से, जान लेते हैं कि अमुक तत्व आकाश है, अमुक तत्व पृथ्वी है। प्रत्येक तत्व के भिन्न भिन्न रंग और भिन्न भिन्न आकृतियां होती हैं; और वे अत्यन्त निकट-सम्बन्ध से परस्पर समाविष्ट होते हैं; परन्तु वहां भी अपनी अपनी आकृति और रंगों का परित्याग नहीं करते हैं।

इस नियम के कारण एक तत्व का जब दूसरे तत्व में संयोग होता है तब परस्पर के आन्दोलनों से न्यूनाधिक अंशों में कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य होता है। इससे आकृति और वर्ण में अनेक प्रकार के भेद हो जाते हैं। सृष्टि में भिन्न भिन्न प्रकार की

आकृति वायुतत्व की बतलाई जाती है। इसका प्रधान गुण स्थानान्तरों में हलचल करने का है। कम्पन क्रिया ही इसका ल है। यह तत्व स्पर्शेन्द्रिय का उत्पादक और पोषक है। शरीर त्वचा में इसकी स्थूल सत्ता का साम्राज्य प्रवर्तित है। शरीर प्रत्येक अवयव की हलचल उस अवयव में रहनेवाले वायुतत्व अणुओं द्वारा ही होती है। फेफड़ों में वह स्वाभाविक रीति व्याप्त रहता है; और हाथों में उसकी प्रधान सत्ता रहती है। योगशास्त्र में लिखा है कि इसका रंग हलका आसमानी है धारणा के समय योगियों को वह ऐसा ही दिखलाई पड़ता है ऐसा होने पर भी अनेक लेखक इसका वर्ण गहरा नीला बतला हैं। यह उनका भ्रम है।

३–अग्नितत्व

इसको 'पावक' या 'तेजस्' तत्व भी कहते हैं। हमें अपने शरीर में जिस उष्णता का भास होता है वह तेजस तत्व के ही कारण है। तेजस् तत्व नेत्रेन्द्रिय का पोषक है; और नेत्रों के ज्ञानतंतुओं में उसकी सत्ता प्रधान रूप से रहती है। प्रकाश और उष्णता के रूप में वह प्रतीत होता है। इसका स्वभाव योगियों ने प्रसरणशील, अर्थात् फैलनेवाला, बतलाया है। दाह और अन्य प्रकार के रोगों में शोथ (सूजन) उत्पन्न होने का प्रधान कारण अग्नितत्व ही है। ज्वर में इस तत्व का परिमाण बहुत बढ़ जाता है। इसकी आकृति त्रिकोणाकार है; और रंग रक्तवर्णी होता ।

४—जलतत्व

- जलतत्व को अपस्तत्व भी कहते हैं। इसका रंग श्वेत तथा
गनी आभावाला होता है। यह रसनेन्द्रिय का पोषक है, और
सका प्रधान गुण संकोचन है। इसकी सत्ता रसना में मुख्यतया
ती है। जलतत्व की सत्ता के द्वारा ही रसों का स्वाद जाना
ाता है। वैखरी अर्थात् वाणी के उच्चारण का कार्य भी इसी
 द्वारा होता है। इसके आन्दोलन अर्धचन्द्राकार लहरों की
ाकृति के होते हैं; और वे स्वर की उत्पत्ति में प्रधान निमित्त-
प हैं।

जलतत्व का अन्य तत्वों के साथ विविध परिमाण में संयोग
ो संगीतशास्त्र में स्वर के असंख्य सूक्ष्म भेदों को प्रगट करता है।
त्येक स्वर का अपना अपना खास रंग होता है; और इन रंगों
ा हेतु उपर्युक्त तत्वों का संयोग ही है। इन्हीं संयोगों के कारण
ंतःकरण के मनोभावों पर सत्ता चलानेवाला एक सूक्ष्मतत्व
त्पन्न होता है। ज्ञानतंतुओं पर अनुकूल अथवा प्रतिकूल प्रभाव
ालनेवाले ये स्वरों के वर्ण ही हैं। ज्ञानतंतुओं पर अनुकूल या
तिकूल प्रभाव के कारण ही संगीत से अनेक प्रकार के रोग दूर
ो जाते हैं; और बढ़ भी जाते हैं।

नदियों की रेती से पानी हट जाने पर वहां लहरों की
आकृतियां स्पष्ट रूप से आलेखित दिखाई देती हैं। इससे सिद्ध
होता है कि जलतत्व के आन्दोलन, लहरों के आकार के समान,
अर्धचन्द्राकार होते हैं।

५-पृथ्वीतत्व

पृथ्वीतत्व पांचों तत्वों में सब से स्थूल तत्व है। यह गंध को पहिचाननेवाली इन्द्रियों का पोषक है। निरोध और संयुक्तता, ये दो इसके खास धर्म हैं। इसकी आकृति चतुष्कोण है। इ तंतुओं की ग्रन्थियों में इसकी सत्ता प्रधानता से रहती इसका रंग पीला होता है। शरीर में पृथ्वीतत्व की, आवश्य से अधिक, वृद्धि हो जाने से यकृत-सम्बन्धी अनेक रोग उ होते हैं। पांडु और कामले में त्वचा का पीला रंग, शरीर पृथ्वीतत्व की अधिक वृद्धि का सूचक है।

रंग-भेद का कोष्टक

नाम	रंग	गुण	आकृति	इन्द्रियव्यापार
१ आकाश	सफेद नीलाभा	रिक्त स्थान	अनेक बिन्दु-युक्त गोलाकार	सुनना
२ वायु	आस्मानी	कम्पन	गोल	स्पर्श करना
३ तेजस्	रक्तवर्णी (लाल)	प्रसरण	त्रिकोण	देखना
४ अपम्	सफेद या बैंगनी झलक	संकोचन	अर्धचन्द्राकार	स्वाद पहिचानना
५ पृथ्वी	पीला	निरोध	चतुष्कोण	सूँघना

प्राणायाम की क्रियाओं में योग-साधक ज्यों ज्यों प्राणों ऊपर विजय प्राप्त करता जाता है, त्यों त्यों वह अधिकाधि अनुभव करता है कि हमारे शरीर में कौन से तत्व की प्रधान है, कौन से तत्व की गौणता है, तथा हमारे स्वास्थ्य के संर में कौन से तत्व की प्रधानता और कौन से तत्व की गौणत आवश्यकता है। इस अभूतपूर्व ज्ञान से वह इच्छानुसार समय में अपने शरीर में चाहे जिस तत्व की प्रधानता और जिस तत्व की गौणता कर सकता है।

ये पांचों तत्व प्राण में रहते हैं। अब, यदि कोई योगस अपने शरीर में अग्नितत्व की प्रधानता करना चाहे, तो तत्व की प्रधान सत्ता जिस चक्र में रहती है, उस चक्र में, प्रा याम की क्रिया के द्वारा, प्राण को प्रेरित कर सकता है। अ उस चक्र में प्राण का कुम्भक करने से अग्नितत्व की धारणा जाती है। इससे प्राण में रहनेवाले अग्नितत्व के द्वारा वह पोषित होकर वहां अग्नितत्व की वृद्धि हो जाती है। प्रकार आकाशतत्व की प्रधानता करना हो तो जिस चक्र आकाशतत्व की प्रधान सत्ता होती है उस चक्र में, आकाश की धारणा सहित, प्राण का कुम्भक करने से उस चक्र आकाशतत्व संचारित हो जाता है। इस प्रकार योगी लोग जिस समय अपने शरीर में चाहे जिस तत्व की वृद्धि सकते हैं।

कोई कोई योग-साधक, प्राणायाम के बिना ही, गुरु

ाई हुई युक्ति के द्वारा, ध्यान-धारणा करते हैं। वे साधक भी
वों की शारीरिक विषमता दूर करके उसमें सम अवस्था ला
कते हैं। अंतर केवल इतना ही है कि प्राणायाम के द्वारा
ट्चक्रों में जो धारणा लाई जाती है, उससे बहुत शीघ्र सुन्दर
रिणाम दिखाई देता है। प्राणायाम से रहित धारणा विलम्ब से
ल उत्पन्न करती है। यथोचित रीति से षट्चक्रों में धारणा के
ाधन करनेवाले साधकों को, धारणा के अन्त में, जिस अपूर्व
ांति तथा स्वास्थ्य का अनुभव होता है उसका कारण धारणा से
र हुई तत्वों की विषमता ही है।

कुछ लोग विश्वास नहीं करते कि प्राणायाम के द्वारा चक्रों में
ाण का कुम्भक करने से तत्वों में परिवर्तन हो जाता है। उनका
थन है कि शारीरशास्त्र के नियमानुसार वायु की गति फेफड़ों
निचले अन्तिम भाग तक ही हो सकती है; और फेफड़ों का
ंतिम सिरा पोला नहीं है कि जिससे वायु नाभिचक्र, या
ससे भी नीचे के भाग तक जा सके। वे कहते हैं कि मणिपूर
क्र अब नाभि के पास है; और स्वाधिष्ठान तथा आधारचक्र
ाभि से और भी चार या आठ अंगुल नीचे हैं, ॐ तब वहां तक
ाणवायु जाने की सम्भावना कैसे हो सकती है? इसके सिवाय
फड़े भी वायु पूरित करनेवाली पोली नली के समान नहीं हैं,
ो वहां तक वायु पूरित करते रहें। इसलिये उनका विश्वास है
क इन नीचे के चक्रों में तत्वों की धारणा करते समय प्राणवायु

ॐ देखो चित्र नं० ० पृष्ठ २०

को रोक रखने का उपरोक्त वर्णन, और उसकी क्रियाएं, क
सफल नहीं हो सकतीं।

वास्तव में इस प्रकार की शंकाएं तत्वों के स्वरू
अज्ञानता से ही उत्पन्न होती हैं। हम पहिले ही कह चुके हैं
तत्व दो प्रकार के होते हैं। पहिले स्थूल और दूसरे सूक्ष्म
स्थूल तत्वों के अन्दर सूक्ष्म तत्व समन्वित हैं। स्थूल तत्व
का प्रत्यक्ष स्वरूप यह शरीर है और सूक्ष्मतत्व इस शरीर
अन्दर रहनेवाली आत्मा से सम्बन्ध रखते हैं। स्थूलतत्व
जड़ प्रतिबिम्बों का भेदन कर उसके पार नहीं जा सकते हैं
परन्तु उनमें रहनेवाले सूक्ष्मतत्व किसी के भी रोके नहीं रुक
सकते। सूक्ष्म होने के कारण वे सभी प्रकार के स्थूल पदार्थों
का भेदन कर उनके पार जा सकते हैं। जैसे सूर्य्य का प्रकाश
दीवाल को भेद कर कमरे के अन्दर नहीं आ सकता है; परन्तु
उष्णता, जो उसका असली धर्म है, अवश्य दीवाल का भेदन कर
कमरे में जा सकती है। ग्रीष्मऋतु में मध्यान्ह के समय, बाहर
अत्यधिक गर्मी होती है; तब घर के अन्दर की दीवालें भी तप
जाती हैं। इसी प्रकार छत को भेदकर उष्णता घर में आकर
मनुष्यों को आकुल व्याकुल कर देती है। इस उदाहरण से स्पष्ट होता
है कि सूक्ष्म तत्व घन पदार्थों का भेदन कर, बिना किसी प्रति-
बन्ध के, उसपार जा सकते हैं। इसलिए प्राणायाम के समय स्थूल
वायु फेफड़ों के अन्तिम भाग के पार चाहे न जावे; परन्तु जिस
चक्र में धारणा की जाती है, उस चक्र में धारणाशक्ति अर्थात्

रिवल के द्वारा, वायु में रहनेवाले सूक्ष्म तत्व प्रवेश कर सकते
, और उन चक्रों में रहनेवाले तत्वों को पोषित कर सकते हैं।
एव मणिपूर चक्र में, अथवा उसके नीचे के चक्रों में, प्राणवायु
कुंभक करने का जो विधान योगशास्त्र में किया गया है, उसमें
सी प्रकार की त्रुटि नहीं है; किन्तु इससे हमारे योगियों की
मदर्शिता का पूरा पूरा परिचय मिलता है। सारांश यह है कि
गशास्त्र इन चक्रों में सूक्ष्म प्राणतत्व के ही कुम्भक का विधान
रता है; और इससे हम सम्पूर्ण शरीर में प्राणशक्ति का यथेष्ट
चार कर सकते हैं।

सच तो यह है कि तत्वों को वशीभूत करके हम शारीरिक
और आध्यात्मिक अनेक लाभ उठा सकते हैं; और उनका जो
र्णन हमारे योगियों ने किया है, वह कपोल-कल्पित नहीं है;
ल्कि स्वयं अनुभव-सिद्ध है। विश्व में जहां देखिये वहीं तत्वों का
ल दृष्टिगोचर होता है। भाफ, वायु और विद्युत् की शक्ति
 कौन अनभिज्ञ है ? बाह्य जगत् में इन तत्वों को वशीभूत
रके विज्ञानवेत्ताओं ने क्या क्या नहीं किया है ? शरीर में भी
न्हीं तत्वों की सत्ता व्याप्त है। बाह्य जगत् में इन तत्वों को
शीभूत करके जिस प्रकार वैज्ञानिकों ने आश्चर्यजनक
र्य कर दिखलाया है, उसी प्रकार शरीर में भी इन तत्वों को
शीभूत करके योगी जन आश्चर्यकारक सामर्थ्य प्राप्त कर
ते हैं।

हम लोग तत्वों का निरन्तर उपयोग करते रहते हैं। बाह्य

ग्रहण करके पृथ्वी, जल और अग्नि तत्व का उपयोग करते
जल पीते समय 'जल' का और श्वास ग्रहण करते समय
तथा अग्नि तत्व का उपयोग करते हैं। सूर्य्य-प्रकाश को
शरीर पर लेकर, तथा प्रकाशमय स्थानों में रहकर, हम अग्नि
वायु का निरन्तर उपयोग करते रहते हैं। हमारा शरीर, म
बुद्धि इत्यादि सब इन्हीं तत्वों का परिणाम है। इस प्रकार
तत्वमय सृष्टि में तत्व प्रतिदिन मनुष्य के उपयोग में आते
और उन्हीं के द्वारा हम जीवित हैं; परन्तु हम अपने जीवन में
प्रणाली से तत्वों का उपयोग करते हैं, उसमें विशेषकर स्थूल
तत्वों का ही उपयोग होता है। यह सच है कि स्थूल तत्वों
में सूक्ष्म तत्व भी रहते हैं; परन्तु स्थूल तत्वों से सूक्ष्म तत्वों को
अलग करके जीवनक्रम में हम उनका उपयोग नहीं करते हैं
क्योंकि ऐसा करने के लिए हमारे शरीर के जीवन-निर्वाहक
अवयवों को बहुत परिश्रम करना पड़ता है; परन्तु सूक्ष्म तत्व
ही शारीरिक, मानसिक, और आध्यात्मिक बल के उत्पादक हैं।

स्थूल शरीर के जठर, यकृत, और फेफड़े इत्यादि अवयव
प्रतिदिन, भगीरथ-प्रयत्न करते रहने पर भी, भोजन इत्यादि
से अत्यन्त अल्प सत्व को अलग करके ग्रहण कर सकते हैं।
खाये हुए अन्न में से कितने कम भाग का रुधिर बनता है, और
मल के रूप में कितना अधिक भाग हमारे मलोत्सर्ग करनेवाले
अवयवों को निकाल देना पड़ता है, इसका विचार कौन करता
है! सच तो यह है कि यदि जीवन-निर्वाह के लिये सूक्ष्म तत्व

रूप में ही हमें मिलते रहें, तो व्यर्थ परिश्रम से हमारे शारीरिक
यवों की रक्षा हो और इसो बचत से हमारो जीवनी-शक्ति
जाय; और हम अधिक दीर्घजीवी हों ।

ये पांचो तत्व अन्नादि स्थूल पदार्थों की अपेक्षा प्राणवायु में
अधिक शुद्ध रूप में रहते हैं । अन्न इत्यादि से इन स्थूल तत्वों को
अलग करने में शरीर के अवयवों को जितना अधिक परिश्रम
करना पड़ता है, उसकी अपेक्षा प्राणवायु से इन्हें अलग करने
में बहुत ही कम परिश्रम करना पड़ता है । इससे यह सिद्ध
होता है कि शरीर में शुद्ध वायु ग्रहण करने से सूक्ष्म तत्व
अधिक परिमाण में प्राप्त होते हैं; और इससे हम अपने स्वास्थ्य,
आयु, बुद्धि और आध्यात्मिक शक्ति को यथेष्ट रूप में बढ़ा
सकते हैं ।

केवल दीर्घ-श्वास-प्रश्वास की क्रिया से ही ये सूक्ष्म तत्व
आवश्यक परिमाण में शरीर में शोषित नहीं हो सकते; क्योंकि
वे श्वास के द्वारा शरीर में आते हैं; और बहुत अल्प परिमाण में
रहकर फिर प्रश्वास के द्वारा बाहर निकल जाते हैं । वास्तव में ये
सूक्ष्म तत्व हमारे शरीर में यथेष्ट रूप से रहने चाहिएं, जिससे
हमारा शरीर, मन और बुद्धि सर्वोत्तम रीति से शुद्ध हो; और
हमको अपरिमित मनोबल और अध्यात्मबल प्राप्त हो । बस
इसीलिये हमारे सर्वज्ञ ऋषि-मुनियों ने प्राणायाम का आविष्कार
किया है । प्राणायाम के द्वारा ये
अंशों में ग्रहण किये जा सकते

इनको शरीर के भिन्न भिन्न भागों में प्रेरित करके जहां इनको आ-
वश्यकता होती है वहां इनका उपयोग कर सकते हैं।

तत्वों का अभ्यास करनेवाले साधकों को उनके वर्ण और
आकृति से यह अनुभव करना चाहिए कि इस बाह्य सृष्टि
प्रकृति से उत्पन्न हुए भिन्न भिन्न पदार्थों में कौनसा तत्व प्रधान
रीति से है, अथवा कौन कौन से पदार्थों में किन किन तत्वों
का संयोग हुआ है। उदाहरण के तौर पर—वृक्षों को देखकर
उनके अन्दर कौनसा तत्व प्रधान रीति से व्याप्त है, उसका विचार
पूर्वक निर्णय करना चाहिये। वृक्ष पृथ्वी के अन्दर अपनी जड़
जमाते हैं, और उसमें से पोषण ग्रहण करते हैं। जब तक बीज
पृथ्वी में रहता है, तब तक इसका रंग पीलापन धारण किये रहता
है; क्योंकि उसका पृथ्वी और जल से सम्बन्ध रहता है; और
पृथ्वी का रंग पीला तथा जल का रंग सफेद होता है। जब वह
अंकुर निकालकर पृथ्वी के बाहर आता है तब उसके पत्ते हरे
रंग के होते हैं। वृक्ष के पत्ते और फल इत्यादि की रचना वायु में
होती है। इसीसे उनका रंग हरा होता है; क्योंकि हवा का रंग
आस्मानी है। इस प्रकार पृथ्वी के पीले रंग और वायु के आस्मानी
रंग का संयोग होते ही वृक्षों का रंग हरा हो जाता है; जो हमारे
नेत्रों को सुखद शीतलता प्रदान करता है। इसी प्रकार वर्ण और
उत्पत्ति के आधार से बुद्धिमान् मनुष्य सहज में निर्णय कर
सकते हैं कि कौन से पदार्थ में कौन कौन से तत्वों की प्रधानता है।

व्याधि या रोग का चिन्ह मालूम होते ही योग-साधक को

ई निर्णय करना चाहिये कि हमारे शरीर में कौन से तत्व की
षमता हुई है और फिर प्राणायाम तथा धारणा के द्वारा उस
व की विषमता का निवारण करना चाहिये। जिनको चक्रों में
रणा करने का ज्ञान सद्गुरु के द्वारा न हुआ हो, उन्हें गत
ध्याय में वर्णित लोम-विलोम-प्राणायाम, शक्ति के अनुसार,
ना चाहिये; और क्रम क्रम से अभ्यास करके कुम्भक के काल
बढ़ाना चाहिये। चक्रों की धारणा के स्थान में, पूरक के समय,
धक को यह विचार दृढ़ रखना चाहिए कि प्राणवायु का प्रवाह
रज्जु के नीचे के भाग तक आ रहा है। कुम्भक करने में शक्ति
कुल ही न लगाना चाहिये। कुम्भक का समय बढ़ाने की
रता में इतनी शक्ति न लगानी चाहिये कि घबड़ाहट होने लग
ं, शरीर में बेचैनी छा जावे, या सीने में दर्द होने लग जावे।
कुम्भक अनेक रोगों का उत्पादक है। इसलिये वायु को
र इतने ही समय तक रोकना चाहिये कि जिससे सुखपूर्वक
र में शांति रहे।

सुखपूर्वक किया जानेवाला कुम्भक-सहित लोम-विलोम-
णायाम शारीरिक आरोग्यता में सुन्दर परिवर्तन करता है,
मण्डल को कांतिवान बनाता है और मानसिक शक्तियों को
करके अध्यात्म-बल में वृद्धि करता है।

जिन लोगों की चित्तवृत्ति चंचल रहती हो, उनको विधिपूर्वक
यवा बारह मास तक लोम-विलोम-प्राणायाम का अभ्यास
चाहिये। इससे मानसिक चंचलता की शिकायत दूर हो जाती

है; और मन शान्त हो जाता है। साल भर तक लोम-विलोम-प्राणा-
याम का अभ्यास करनेवाले मनुष्यों को शीघ्र ही यह अनुभव
आता है कि शारीरिक और मानसिक सुख-शान्ति को प्र
करनेवाले उपायों में लोम-विलोम-प्राणायाम एक प्रबल उपाय

संकल्पशक्ति बढ़ाने के लिये भी निरर्थक साधनों के च
में न पड़कर लोम-विलोम-प्राणायाम का ही साधन क
चाहिये। क्योंकि इसके लिये भी यही प्राणायाम एक अम
उपाय साबित हुआ है।

प्रत्येक साधन की शक्ति, पुरुषार्थ के द्वारा, सिद्ध करने से
प्रत्यक्ष होती है। केवल पढ़ लेने या वाद-विवाद में ही पड़े र
से कोई भी काम नहीं बनता।

तेरहवां अध्याय

प्राणायाम की कुछ उपयोगी क्रियाएं

...इ अध्याय में, तथा इसके बाद के अनेक अध्यायों में, ...णायाम की जो क्रियाएं लिखी जाती हैं, उनका योगविद्या के ...ों में प्राणायाम के रूप में वर्णन कदाचित् ही दृष्टिगोचर होता ...। कारण कि योगशास्त्र ने प्राण-विज्ञान की उन्हीं क्रियाओं की ...णायाम में गणना की है, जो चित्तवृत्ति के निरोध के लिए ...ान रूप से उपयोगी समझी गई हैं। व्यवहारिक फल प्रदान ...नेवाली क्रियाओं की गणना उसने प्राणायाम में नहीं की है। ... पुस्तक में केवल योगशास्त्र की प्राणायाम-विधियों का ही ...रूपण करना हमारा उद्देश्य नहीं है; किन्तु श्वसन-क्रिया ... सम्बन्ध रखनेवाली सभी कसरतों को हमने प्राणायाम ...ा है। अतएव वे सभी प्राणायाम के नाम से ही लिखी गई हैं। ...पि इन कसरतों से केवल व्यवहारिक फल प्राप्त होता है, ...पि श्वसन-क्रिया-सम्बन्धी सभी कसरतों की—फिर चाहे वे ...हारिक फल प्रदान करें, चाहे मानसिक निरोध करके ब्रह्म में ... करें—हमने प्राणायाम में ही गणना की है। इसलिये मान- ... एकाग्रता का साधन करनेवालों को, ...ी वास्त- ... सिद्धि के लिये, जो नियम यौगिक ...

नियम—या उनमें साधारणभिन्न नियम—यदि इन व्याया दिखलाई पड़ें, तो बुद्धिमान मनुष्यों को इस पर शंका न चाहिये।

मानसिक एकाग्रता के लिये महान् उपयोगी दस प्रका प्राणायाम हैं। उनका स्वरूप जानने की इच्छा रखनेवाले पु को "सिद्धान्त-सिन्धु" और "हठयोग-प्रदीपिका" इत्यादि पढ़ना चाहिये; परन्तु यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि उन सिद्धि किसी अच्छे योगी-महात्मा के निरीक्षण में अभ्यास क से ही हो सकती है। परन्तु हम प्राणायाम के जिन व्याया का यहां विधान करेंगे, उनका अभ्यास करने के लिये वि गुरु की विशेष आवश्यकता नहीं है। उनको ठीक ठीक स कर स्वयं उनका साधन करने से सफलता सहज ही मि सकती है।

१—मल-शोधक सुखद प्राणायाम

पिछले एक अध्याय में प्रथम प्रकार का मलशोधक प्रा याम लिखा गया है। अब यहां पर एक दूसरे प्रकार का मलशो प्राणायाम दिया जाता है। श्वास-प्रश्वास की विविध क्रियाओं अभ्यास करनेवाले मनुष्य यदि प्रत्येक क्रिया के अन्त में प्राणायाम कर लिया करें, तो उनका परिश्रम बहुत शीघ्र दूर जायगा। इस प्राणायाम से फेफड़े शुद्ध होते हैं, शरीर के कोषों चैतन्य का समावेश होता है; और श्वास-नलिका तथा शरीर

निकालकर वह बहुत कुछ विश्रान्ति का अनुभव करता है। इससे मालूम होता है कि खास खास अवसरों पर मुँह से श्वास निकालकर भी मनुष्य आराम पाता है

२–ज्ञान-तन्तुओं को बल तथा पुष्टि प्रदान करनेवाला प्राणायाम

इस क्रिया से ज्ञानतंतु बलवान तथा पुष्ट होते हैं। जिनके तंतु निर्बल पड़ गये हैं वे यदि कुछ दिनों तक इस क्रिया नियमित रीति से करते रहें तो उन्हें स्वयं अनुभव हो गा कि ज्ञान-तंतुओं को बलवान बनाने में यह क्रिया अद्वितीय समस्त शरीर के ज्ञानतंतु-व्यूह का यह पोषण करती है और में नूतन बल तथा जीवन संचित करती है। विशेष कर शरीर जिन जिन प्रधान स्थानों में ज्ञान-तंतु एकत्र हुए हैं, उन उन नों को यह क्रिया विशेष रूप से बल प्रदान करती है। इस र उनको जब नियमित रीति से बल प्राप्त होता रहता है, तब प ज्ञानतंतु-व्यूह बलशाली हो जाता है।

विधि

(१) खुली हवा में सीधे खड़े हो जाओ।

(२) पूर्व-कथनानुसार नासिका के दोनों छिद्रों के द्वारा फेफड़ों वायु से पूर्णतया भरो और अन्दर ही वायु रोक रखो।

(३) दोनों हाथों को सामने सीधा फैलाओ; परन्तु शिथिल रो। इतने शिथिल भी न रखो कि वे सीधे न रह सकें।

को इसके गुणों का विश्वास हो जायगा। सरलतापूर्वक, स्वाभाविक रीति से, इस क्रिया का अभ्यास इतने समय तक करते रहना चाहिये, जितने समय तक सुखपूर्वक किया जा सके।

इस क्रिया में मुख के द्वारा वायु बाहर निकालने का आदेश है। यह अनेक लोगों को योगशास्त्रों के नियमों के विरुद्ध प्रतीत होगा; क्योंकि यौगिक ग्रन्थों में लिखा है कि मुख के द्वारा वायु बाहर निकालने से शारीरिक शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं। प्राणायाम की कुछ विशेष विधियों में इस नियम का बहुत कुछ पालन हो सकता है। परन्तु श्वसन-क्रिया के सभी अवसरों पर इस नियम का आग्रहपूर्वक पालन करना असम्भव है। गायक, वक्ता, और शिक्षक इत्यादि को वाणी का व्यापार करते समय, तथा अन्य मनुष्यों को बातचीत करते समय, न्यूनाधिक परिमाण में वायु मुख के द्वारा बाहर निकालनी ही पड़ती है; परन्तु इससे उनकी शक्तियां, अन्य मनुष्यों की अपेक्षा, विशेष क्षीण प्रतीत नहीं होतीं हैं। इसलिये केवल प्राणायाम की खास खास क्रियाएं करनेवाले साधकों को श्वास मुख के द्वारा बाहर न निकालना चाहिये; परन्तु सभी प्रकार के लोगों के लिए ऐसा नियम कर देना उपयुक्त न होगा। इसके सिवाय श्वास-विज्ञान की कुछ कसरतों में भी मुख के द्वारा श्वास बाहर निकालनी पड़ती है। अकसर देखा जाता है कि जब कोई मनुष्य बातचीत करते हुए, चलते हुए, अथवा अन्य कोई परिश्रम करते हुए श्रमित हो जाता है, तब अचानक होठों को सीटी बजाने की तरह संकुचित करके मुँह से वायु

निकालकर वह बहुत कुछ विश्रान्ति का अनुभव करता है। इससे विदित होता है कि खास खास अवसरों पर मुँह से श्वास निकालकर भी मनुष्य आराम पाता है

२-ज्ञान-तन्तुओं को बल तथा पुष्टि प्रदान करनेवाला प्राणायाम

इस क्रिया से ज्ञानतंतु बलवान तथा पुष्ट होते हैं। जिनके ज्ञानतंतु निर्बल पड़ गये हैं वे यदि कुछ दिनों तक इस क्रिया को नियमित रीति से करते रहें तो उन्हें स्वयं अनुभव हो जायगा कि ज्ञान-तंतुओं को बलवान बनाने में यह क्रिया अद्वितीय है। समस्त शरीर के ज्ञानतंतु-व्यूह का यह पोषण करती है और इसमें नूतन बल तथा जीवन संचित करती है। विशेष कर शरीर के जिन जिन प्रधान स्थानों में ज्ञान-तंतु एकत्र हुए हैं, उन उन स्थानों को यह क्रिया विशेष रूप से बल प्रदान करती है। इस प्रकार उनको जब नियमित रीति से बल प्राप्त होता रहता है, तब उसम ज्ञानतंतु-व्यूह बलशाली हो जाता है।

विधि

(१) खुली हवा में सीधे खड़े हो जाओ।

(२) पूर्व-कथनानुसार नासिका के दोनों छिद्रों के द्वारा फेफड़ों को वायु से पूर्णतया भरो और अन्दर ही वायु रोक रखो।

(३) दोनों हाथों को सामने सीधा फैलाओ; परन्तु शिथिल रखो। इतने शिथिल भी न रखो कि वे सीधे न रह सकें।

(४) फिर हाथों की स्नायुओं को दृढ़ करके मुट्ठी ब[illegible] जाओ और उनको धीरे धीरे कंधे की ओर लाते जाओ। [illegible] हाथ कंधे तक आवें; और उधर हाथों की मुट्ठियां इतनी [illegible] होती जायँ कि हाथों में कम्प मालूम होने लगे।

(५) फिर अवयवों की दृढ़ अवस्था में ही मुट्ठियों को धी[रे] धीरे खोलो; पुनः वेग से बन्द करो। इस प्रकार बार बार क[रते] रहो।

(६) फिर मुख के द्वारा धीरे धीरे, परन्तु बलपूर्वक, श्वा[स] बाहर निकाल दो।

(७) अन्त में कुछ ठहरकर मल-शोधक प्राणायाम कर लो।

इस क्रिया में वास्तविक लाभ होने का आधार प्रधान रीति से मुट्ठियां वेगपूर्वक बन्द करने, अवयवों को तंग करने और वायु के द्वारा फेफड़ों को पूर्ण रीति से भरने में है। अभ्यास के बिना इस क्रिया के वास्तविक लाभों का अनुमान नहीं किया जा सकता। अभ्यास से इसका लाभ प्रकट होने के बाद इसके वास्तविक महत्व का अनुभव होता है।

वायु से फेफड़े पूर्णतया भरने, वायु को भीतर रोक रखने और अन्त में फेफड़ों को धीरे धीरे, किन्तु वेगपूर्वक, खाली करने की जो विधि इस क्रिया में बतलाई गई है, वह अभ्यास के द्वारा क्रमशः सिद्ध कर लेने पर ही इस क्रिया में सफलता प्राप्त हो सकती है। जो मनुष्य क्रम क्रम से धीरे धीरे अभ्यास को नहीं बढ़ाते हैं; किन्तु एकदम सफलता की आशा रखते

, वे पहिली पुस्तक पढ़े बिना ही चौथी पुस्तक पढ़ने की चेष्टा रते हैं।

३–स्वर-सुधारक प्राणायाम

यह प्राणायाम स्वर को बलवान, मधुर, स्पष्ट और कर्णप्रिय नता है। नियमित रीति से इस क्रिया का अभ्यास करने-ालों के स्वर में उपर्युक्त सभी गुण आ जाते हैं। दिन भर यह क्रिया न करनी चाहिये। किन्तु प्रति दिन पन्द्रह से तीस मिनट क यह क्रिया करनी चाहिये। प्रत्येक कार्य की सिद्धि में जितनी दृढ़ता चाहिए, उतना ही नियमितपन भी चाहिए।

विधि

(१) बहुत ही मन्द वेग से, किन्तु समान गति से, तब तक वायु फेफड़ों में ग्रहण करते जाओ, जब तक वे पूर्णतया भर न जायँ। वायु ग्रहण करने में अधिक से अधिक समय लगाने की चेष्टा करनी चाहिये।

(२) ग्रहण की हुई वायु कुछ समय अन्दर ही रोके रहो।

(३) फिर मुँह फैलाकर एक ही प्रवाह में वायु को वेग-पूर्वक बाहर निकाल दो।

(४) अभ्यास के अन्त में द्वितीय प्रकार का मल-शोधक प्राणायाम करो।

४–द्वितीय प्रकार का स्वर-सुधारक प्राणायाम

(१) मानसिक वृत्ति को छाती के नीचेवाले छेद के भीतरी

भाग में, अत्यन्त गहरी जगह में, जहाँ अनाहत चक्र है, स्थिर करो।

(२) फिर ऐसा संकल्प करो कि बाहर किसी प्रकार की क्रिया नहीं होती है; किन्तु क्रिया अन्दर के ही भाग में हो रही है। इसके बाद वायु अल्प परिमाण में नासिका के दोनों छिद्रों के द्वारा अन्दर खींचो, फिर रुको, फिर अल्प परिमाण में वायु अन्दर खींचो, फिर रुको, फिर वायु अल्प परिमाण में अन्दर खींचो। इस प्रकार चार-पांच बार में धीरे धीरे फेफड़ों में वायु यथेष्ट परिमाण में पूर्णतया भरो। उदर को बहुत हिलने न दो। यद्यपि उदर का स्नायु-मंडल वायु के कारण दबता है; और इससे वे अवयव क्रियात्मक होते हैं; और उदर का भाग साधारणतया हिलता भी है; परन्तु यह सब बहुत ही मन्द गति से होने देना चाहिये। जो कुछ हल-चल हो, अन्दर के ही भाग में होती रहे। ऐसी चेष्टा सावधानी के साथ करनी चाहिये।

(३) वायु अन्दर खींचने में जितना समय लगा हो उतने ही समय तक वायु अन्दर रोक रखो। सारी वृत्तियां अनाहत चक्र के ऊपर ही स्थिर रखो।

(४) फिर जितने समय तक वायु रोक रखी हो, उतने ही समय में, अन्दर खींचने के समान, क्रम क्रम से थोड़ी थोड़ी वायु बाहर निकाल दो। प्रारम्भ में यह क्रिया पांच मिनट तक और अभ्यास बढ़ जाने पर फिर दस मिनट तक, करनी चाहिये। इससे अधिक समय क्रिया में नहीं लगाना चाहिये। दिन में दो

तीन बार, अनुकूलता के अनुसार, यह क्रिया की जा सकती है।

क्रिया का अभ्यास हो जाने पर, वायु बिना रुके हुए, एक ही य, ग्रहण करना चाहें, तो की जा सकती है। परन्तु बाहर निकालते समय उपर्युक्त क्रम का ध्यान अवश्य रखना चाहिये।

इस क्रिया के अभ्यास से स्वर अत्यंत मधुर* और मनोहर जाता है। शारीरिक संगठन की रचना नूतन रीति से होती है और मानसिक वृत्तियों के ऊपर भी इसका बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ता है।

चौदहवां अध्याय

शक्तिवर्द्धक कुछ मुख्य प्राणायाम

इस अध्याय में वर्णित सात प्रकार के प्राणायाम फेफड़े, स्नायु, सन्धिस्थान इत्यादि शारीरिक अंगों की शक्ति बढ़ानेवाले हैं। इसलिये ये मनुष्य-मात्र के लिये अत्यन्त उपयोगी हैं। यों तो ये देखने में बहुत ही सरल हैं, परन्तु फल प्रदान करने में अत्यन्त चमत्कारक हैं। इनकी सरलता देखकर बुद्धिमान मनुष्यों को इनका अनादर न करना चाहिये; क्योंकि इनके द्वारा प्राप्त होनेवाले शुभ फल काल्पनिक नहीं हैं; किन्तु अनुभव-सिद्ध हैं।

१—शरीर में वायु स्थिर रखनेवाला प्राणायाम

यह विधि अत्यन्त आवश्यक है। इसके अभ्यास से फेफड़े और श्वसन-क्रिया के उपयोग में आनेवाले सभी अवयव बलवान होते हैं। इसमें छाती चौड़ी, दृढ़ और मोटी होती है। इस प्राणायाम के अभ्यासी योगियों का अनुभव है कि अवसर के अनुसार फेफड़े पूर्ण रूप से भरकर वायु रोक रखने से श्वसन-क्रिया के उपयोग में आनेवाले सभी अवयव बलवान हो जाते हैं। इसमें पचन-क्रिया में, ज्ञानतंतुओं के व्यूह में, और रक्त-शुद्धि में आश्चर्यजनक लाभ प्रतीत होता है। इस प्रकार मौके मौके

पर वायु को रोक रखने से, पहिले के श्वास से फेफड़ों में जो वायु भरी हुई होती है, वह शुद्ध होती है; और उसकी शुद्धि होने पर रुधिर पर्याप्त रूप से शुद्ध हो जाता है। इस विधि से रोकी हुई वायु फेफड़ों के अन्दर की सभी गन्दगी एक साथ ही अपने साथ लेकर प्रश्वास के समय बाहर निकाल फेंकती है। इस प्रकार यह प्राणायाम फेफड़ों के लिये एक प्रकार से विरेचन का काम करता है। जठर, यकृत, और रक्त-सम्बन्धी नाना प्रकार के रोगों में यह प्राणायाम बहुत ही लाभकारी सिद्ध हुआ है। कुछ लोगों के प्रश्वास में प्रायः दुर्गन्ध निकलती रहती है। वह इस प्राणायाम से दूर हो जाती है।

विधि

(१) पद्मासन या और किसी सुखासन से विधिपूर्वक बैठ जाओ या सीधे खड़े हो जाओ।

(२) पूर्व-कथनानुसार नासिका के छिद्रों द्वारा फेफड़ों को हवा से भरो।

(३) ग्रहण की हुई वायु को शक्ति के अनुसार भीतर रोक रखो।

(४) मुख के द्वारा वायु वेगपूर्वक बाहर निकाल दो।

(५) अन्त में मल-शोधक प्राणायाम कर लो।

प्रारम्भ में वायु बहुत ही अल्प समय तक रुक सकेगी; परन्तु अभ्यास बढ़ जाने पर विशेष समय तक रोकी जा सकेगी।

वायु को रोकने की शक्ति प्रतिदिन कितनी बढ़ती है, यह जानने की इच्छा रखनेवालों को घड़ी रखकर देख लेना चाहिये। दिन में समयानुसार यह प्राणायाम अवकाश मिलने पर कर लेना चाहिये।

२–फेफड़ों और वायु-कोषों (Air-cells) को बलवान् बनानेवाला प्राणायाम

इस प्राणायाम के अभ्यास से फेफड़ों के अन्दर के वायु-कोष जागृत होकर बलवान् हो जाते हैं। योगविद्या के प्रारम्भिक अभ्यासियों को यह क्रिया हठपूर्वक, आवश्यकता से अधिक समय तक, नहीं करनी चाहिये। क्रम क्रम से आगे बढ़ने की चेष्टा करनी चाहिये। उतावलेपन से हानि होती है, और धीरे धीरे उन्नति करने से सिद्धि प्राप्त होती है। इस सूत्र को ध्यान में रखना चाहिये। प्रारम्भ में यदि जी घबड़ाने लगे या चक्कर से आने लगें तो क्रिया बन्द करके कुछ समय तक टहलने से यह वेदना शान्त हो जाती है।

विधि

(१) हाथों को दोनों ओर यथास्थान लटकते हुए रखकर खड़े हो जाओ।

(२) अत्यन्त मन्द गति से फेफड़ों में वायु भरो।

(३) वायु पूरित करते समय दाहिने या बांयें हाथ की अँगुलियों के द्वारा छाती पर ठोकरें मारते जाओ।

(४) फेफड़ों में वायु पूर्णतया भर जाने के बाद वायु को
समय तक अन्दर ही रोक रखो; और छाती के समस्त
। को हथेली से धीरे धीरे ठोकते रहो।

(५) वायु धीरे धीरे बाहर निकाल दो।

(६) अन्त में मलशोधक प्राणायाम करो।

यह प्राणायाम शरीर को शक्ति प्रदान करके उसमें जागृति
न करनेवाला है। अपूर्ण श्वास-प्रश्वास की क्रिया से
क लोगों के फेफड़ों के वायु-कोष शिथिल हो जाते हैं; और
त से लोगों के वायुकोष तो बिलकुल ही निर्जीव से हो जाते
। इस क्रिया से वायुकोष जागृत होकर अपना कार्य यथाविधि
करने लगते हैं। परन्तु एक दो दिन में नहीं, किन्तु कुछ दिनों तक
लगातार इस प्राणायाम का अभ्यास करने से अवश्य ही लाभ
होगा। अनेक वर्षों से निर्जीव पड़े हुए अवयवों में, साधारण
सी कसरत से, जागृति का स्वप्न देखना अचरज की बात है।

३—पार्श्व-प्रसारक प्राणायाम

शरीर-रचना में पसलियों की रचना फेफड़ों के ऊपर इस
प्रकार से हुई है कि जब जब फेफड़ों में वायु पूर्ण रीति से भरे
तब तब वे फैल सकें। जो मनुष्य वास्तविक श्वसन-क्रिया नहीं
करते हैं, उनकी पसलियां अच्छी तरह फैलती नहीं हैं, और
दीर्घ काल तक ऐसा ही होते रहने से उनके लचीलेपन का नाश
हो जाता है। उनमें जड़ता आ जाती है। कमर झुकाकर बैठे

म के अभ्यास से छाती पूर्ववत् प्राकृतिक दशा मे
ाती है; और यथेष्ट रूप में चौड़ी होकर विकसित हो
है।

विधि

() सीधे खड़े हो जाओ।
(२) फेफड़ों को वायु से पूर्णतया भर दो।
(३) वायु को अन्दर रोको।
(४) कंधे की सीध में सीधी लाइन में दोनों हाथों को
ाओ।
(५) फिर स्नायुओं को तानकर मुट्ठियों को बन्द करो; और
ी हालत में दोनों हाथों को गोलाकार रीति से घुमाते हुए
मने लाकर एकत्र करो।
(६) पुनः इसी ढंग से गोलाकार रीति से घुमाकर पूर्व-स्थिति
ें आओ।
(७) पुनः दोनों हाथों को, एक साथ मुट्ठी बन्द किये हुए ही,
मुख लाओ। फिर बाजू में ले जाकर मूल-स्थिति में लाओ।
प्रकार चार-पांच दफे बार बार करो।
(८) मुख खोलकर वायु बाहर निकाल दो।
(९) अन्त में मल-शोधक प्राणायाम कर लो।
यह प्राणायाम भी शरीर के सामर्थ्यानुसार ही करना चाहिये।
के से बाहर करने से हानि की सम्भावना है।

५-टहलते हुए प्राणायाम करने की विधि

(१) छाती और मस्तक एकदम सीधा रखकर अपने क़
के माप के अनुसार साधारण गति से चलो।

(२) १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, इस प्रकार मानसिक गिन
करते हुए आठ कदम और चलो। इसी अवधि में फेफड़ों
वायु से पूर्णतया भर लो।

(३) फिर इसी प्रकार १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, मानसि
गिनती करते हुए आठ कदम चलो तथा इतने ही समय तक
वायु को अन्दर रोक रखो।

(४) पुनः इसी प्रकार १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, मन में गिनते
हुए आठ कदम और चलो, तथा इतने समय में नासिका के दोनों
छिद्रों के द्वारा वायु को धीरे धीरे बाहर निकाल दो।

(५) इस प्रकार जब तक परिश्रम मालूम न हो, बार
करते रहो। कुछ समय तक विश्रांति लेकर फिर करने की इ
हो, तो कोई आपत्ति नहीं है। दिन में पाँच-सात बार तक
प्राणायाम किया जा सकता है।

जिन मनुष्यों को आठ कदमों से वायु भरना, रोक र
और बाहर निकालना कठिन प्रतीत होता हो, उन्हें तीन, च
पांच अथवा जितने अनुकूल प्रतीत हों, उतने कदमों से
क्रिया प्रारम्भ करनी चाहिये। शक्ति बढ़ जाने पर बढ़ाते ब
आठ कदमों तक आ जाना चाहिये।

छ लोग इस प्राणायाम में वायु आठ डगों में खींचते हैं, ार में रोकते हैं; और फिर आठ में बाहर निकालते हैं। जिनको वैसी विधि विशेष अनुकूल प्रतीत हो, उन्हें वैसी विधि का ।नुकरण करना चाहिये।

६–पञ्जों के बल प्राणायाम

(१) दोनों ओर दोनों हाथों को सीधा छोड़कर, फौजी ।पाही के समान, छाती तानकर खड़े हो जाओ। पैरों को ड़नों में सख़्त रखो।

(२) शरीर को, समतोल रखकर, धीरे धीरे पंजों के बल ड़ा करो। साथ ही फेफड़ों को वायु से पूरा पूरा भरते ।ओ।

(३) उसी हालत में खड़े हुए यथाशक्ति वायु को अन्दर क रखो।

(४) फिर पहिली हालत में धीरे धीरे आओ।

(५) ऐसा करते समय नासिका के छिद्रों से धीरे धीरे ।यु को बाहर निकालते जाओ।

(६) अन्त में मलशोधक प्राणायाम कर लो।

(७) दिन में चार-पांच बार यह प्राणायाम आनन्द से ते। पैरों के पञ्जों के बल खड़े होते समय गिर न पड़ो। शरीर सूब सावधानी से साधो। यह प्राणायाम प्रातःकाल करने विशेष लाभ होता है।

७–रुधिर की गति को बढ़ानेवाला प्राणायाम

(१) सीधे तनकर खड़े हो जाओ।

(२) फेफड़ों में समान गति से धीरे धीरे वायु पूर्णतया भरो; और रोको।

(३) आगे की ओर स्वाभाविकरूप से थोड़ा झुको; और किसी बेत या छड़ी को दृढ़तापूर्वक पकड़ो; और क्रमशः इस बेत को ज़ोर से दबाने में अपनी समस्त शक्ति का उपयोग करो।

(४) फिर पकड़ को छोड़कर अपनी पहली स्थिति पर आ जाओ; और धीरे धीरे प्रश्वास को बाहर निकालो।

(५) इस प्रकार, शक्ति के अनुसार, बार बार करो।

(६) अन्त में मलशोधक प्राणायाम कर डालो।

इस क्रिया को छड़ी या बेत के सहारे के बिना भी कर सकते हैं। असली बेत की जगह मन में किसी बेत की कल्पना करके उसी को पकड़ो, और उपर्युक्त प्रकार से बलप्रयोग करो। इस क्रिया से शरीर के सभी भागों में रक्त का सञ्चार वेगपूर्वक होने लगता है। हृदय और फेफड़ों की ओर रक्त का प्रवाह, स्वास्थ्य के आक्सिजन लेने के लिये, दौड़ने लगता है। इस प्रकार सम्पूर्ण शरीर में रुधिर की क्रिया यथेष्ट रूप से होने लगती है; और उसकी ख़राबी दूर हो जाती है।

जिन लोगों के रक्त की गति मन्द होती है, उनके फेफड़ों
रक्त आवश्यक परिमाण में नहीं रहता है । इस लिये दीर्घ
ास-प्रश्वास की क्रिया करते समय वह अल्प रक्त, प्राणवायु
ा सभी आक्सिजन नहीं ग्रहण कर सकता । इससे दीर्घ
ास-प्रश्वास की क्रिया का यथेष्ट लाभ उनको नहीं होता । इस
ये ऐसे लोगों को यह क्रिया बहुत दिनों तक सुखपूर्वक
रके अपने रक्त की गति में वृद्धि कर लेनी चाहिये ।

पन्द्रहवां अध्याय

प्राणायाम की कुछ अन्य विधियां

प्राणायाम की जिन सात कसरतों का पिछले अध्याय में वर्णन किया गया है, उनकी अपेक्षा कुछ हलकी अन्य सात कसरतें इस अध्याय में बतलाई जायँगी। ये कसरतें भी काफी लाभदायक हैं। यह आवश्यक नहीं है कि इस पुस्तक में लिखी हुई सभी कसरतें सब लोगों को करनी ही चाहियें। नहीं। जो कसरत जिसको अपने अनुकूल जान पड़े, वह उसी कसरत को करके लाभ उठा सकता है। इन विधियों में से कोई न कोई विधि आप के अनुकूल अवश्य ही निकल आवेगी। बात यह है कि प्रत्येक मनुष्य का अधिकार और आवश्यकता अलग अलग होती है; और इसी कारण हमने इस पुस्तक में नाना प्रकार की प्राणायाम-क्रियाओं का समावेश कर दिया है। प्रत्येक पाठक को सभी प्रकार के प्राणायामों के पीछे न पड़ जाना चाहिए।

इस अध्याय में वर्णित प्राणायाम की क्रियाएं हलकी अवश्य हैं। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि इनका लाभ अल्प है। शरीरारोग्य प्रदान करने में ये भी अत्यन्त उपयोगी हैं, और इसी कारण इनका वर्णन यहां किया गया है। इनका प्रधान कार्य फेफड़ों को विशाल करना है। इसके अतिरिक्त ये मानसिक तथा

क शक्तियों को भी कुछ अंशों में विकसित करती हैं। इसलिये हलकी होने के कारण ये उपेक्षा योग्य नहीं हैं, प्रत्युत कार्य रूप में परिणत करने योग्य हैं। बहुत लोगों को अन्य कठिन प्रकार के प्राणायामों की अपेक्षा इस प्रकार के सरल प्राणायामों की ही विशेष आवश्यकता है।

पहिली विधि

(१) सीधे खड़े हो जाओ। दोनों हाथ दोनों तरफ नीचे लटकते रहें।

(२) फेफड़ों को वायु से पूर्णतया धीरे धीरे भरो।

(३) वायु ग्रहण करते समय दोनों हाथों को तानकर धीरे धीरे मस्तक की ओर ऊपर ले जाओ, जहाँ दोनों हाथ आपस में एक दूसरे को छूने लगें।

(४) फिर इसी हालत में वायु यथाशक्ति भीतर रोको।

(५) धीरे धीरे नासिका के रास्ते वायु बाहर निकालो और साथ ही साथ हाथों को धीरे धीरे अपनी मूल जगह पर ले आओ।

(६) शक्ति के अनुसार कुछ समय तक इस प्रकार करते रहो।

(७) अन्त में मल-शोधक प्राणायाम करो।

दूसरी विधि

(१) सीधे खड़े होकर हाथों को आगे की ओर तानकर बढ़ाओ।

(२) फेफड़ों को वायु से पूर्णतया भरो।

(३) वायु रोको और उसी स्थिति में हाथों को पीछे की ओर तानकर जितना बढ़ा सको, बढ़ाओ। फिर आगे लाओ। फिर पीछे ले जाओ। इस प्रकार जितनी वार हो सके, करते रहो। वायु बराबर रोके रहो।

(४) फिर वायु मुख के रास्ते जोर से बाहर निकाल दो।

(५) अन्त में मलशोधक प्राणायाम करो।

तीसरी विधि

(१) हाथों को सामने सीधा तानकर पूर्व-विधि के समान सीधे खड़े हो जाओ।

(२) पूरी सांस भीतर खींचो।

(३) फिर वायु को भीतर ही रोके हुए भुजाओं को वृत्ताकार झोंका देकर पहले कुछ बार पीछे की ओर से और फिर कुछ बार आगे की ओर से आकाश में कुंडलाकार घुमाओ। इसी प्रकार प्रत्येक भुजा को पीछे और आगे की ओर घुमाते हुए कुण्डलाकार बना सकते हैं।

(४) यथाशक्ति करने के बाद वायु को मुख के मार्ग से जोर से छोड़ दो।

(५) अन्त में मलशोधक सुन्दर प्राणायाम कर डालो।

चौथी विधि

(१) पेट ऊपर की ओर और मुख जमीन की ओर करके

मूल-स्थिति में आओ। शक्ति के अनुसार इस प्रकार दो-तीन बार करो।

(६) मुख के रास्ते वायु बाहर निकाल दो।

(७) अन्त में मल-शोधक प्राणायाम करो।

छठवीं विधि

(१) दोनों हाथ दोनों ओर कमर पर रखकर सीधे खड़े हो जाओ। कुहनियां बाहर निकली रहें।

(२) फेफड़ों को वायु से पूरा पूरा भरो; और वायु रोको।

(३) पैरों और कमर के भाग को तानकर यथाशक्ति आगे की ओर झुको; जैसे सलाम कर रहे हो। साथ ही साथ धीरे धीरे प्रश्वास भी छोड़ते जाओ।

(४) फिर असली हालत में आकर दूसरी बार सांस भर-कर पूरक करो।

(५) फिर पीछे की ओर यथाशक्ति झुको; और झुकते हुए धीरे धीरे वायु बाहर छोड़ते जाओ।

(६) फिर असली दशा में आओ और तीसरा पूरक करो।

(७) अब दाहनी ओर जितना झुक सको, झुको और साथ ही सांस छोड़ते जाओ।

(८) फिर असली दशा में आकर पूरक करो; और बाईं ओर से उसी तरह झुककर रेचक करो।

(९) अन्त में मल-शोधक सुखद प्राणायाम कर लो।

सातवीं विधि

१) इस प्रकार सीधे खड़े हो, या बैठ जाओ कि पृष्ठरज्जु ड्डियां सीधी तनी हुई रहें।

(२) सांस को भीतर भरो; परन्तु एक बारगी नहीं—थोड़ी थोड़ी करके, जैसे हुलास सूंघनेवाले करते हैं, इस प्रकार खंड खंड करके हवा से फेफड़ों को भरते रहो, जब तक कि वे पूरे पूरे न भर जायँ। ध्यान में रहे कि हवा छूटने न पावे।

(३) अब सांस को रोककर कुम्भक करो।

(४) अब एक ही प्रवाह में प्रश्वास के द्वारा धीरे धीरे वायु बाहर निकालो।

(५) अन्त में ताजगी लानेवाला मल-शोधक सुखद प्राणायाम कर डालो।

सोलहवां अध्याय

आसनों के साथ कुछ अन्य सरल प्राणायाम

१–शरीर में गर्मी बढ़ाने के लिए

(१) सिद्धासन से बैठो। (चित्र नं० १४)

(२) दोनों नथुनों से पहले धीरे धीरे पूरक करके रेचक कर डालो।

(३) फिर पूरक उससे भी कुछ तेज़ी से करके रेचक करो।

(४) इस प्रकार पूरक का वेग या क्रम बढ़ाते जाओ, जब तक श्वास लुहार की धौंकनी के समान न चलने लगे।

(५) पसीना आने पर व्यायाम को पूरा समझकर अभ्यास बन्द करो।

२–क्षुधा को वश में करने के लिए

(१) बांया पैर दाहिनी जंघा पर रखो। गर्दन और पीठ सीधी और तनी हुई रहे। हथेलियों को घुटनों पर रखकर मुख बन्द कर लो। (पृष्ठ १४१)

(२) दोनों नासापुटों से धीरे धीरे, परन्तु शीघ्रतापूर्वक, पूरक करो; और बिना कुम्भक किये ही रेचक कर डालो।

(३) इसी प्रकार बराबर अभ्यास करते रहो, जब तक थकावट और पसीना न आ जावे।

) अभ्यास करते समय दृष्टि नासिका के अग्रभाग पर
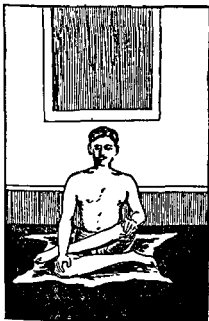
इस प्राणायाम के अभ्यास को बढ़ाने से क्षुधा को वश में कर सकते हैं।

३–स्वास्थ्य-वृद्धि के लिए

(१) बाईं जंघा पर दाहिना और दाहिनी जंघा पर बायां पैर रखो। फिर दाहिने हाथ को पीठ की ओर से ले

चित्र नं० १२—बद्धपद्मासन
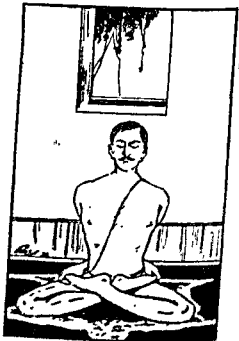
जाकर उससे दाहने पैर के अँगूठे को पकड़ो; और इसी प्रकार बायें पैर के अँगूठे को बायें हाथ से पकड़ो। इस प्रकार दोनों ओर से दोनों अँगूठों को पकड़ने में पहले यदि कुछ कठिनाई हो, तो जहाँ तक हाथ और अँगूठे जा सकें, उनको तानकर अभ्यास शुरू करो। धीरे धीरे प्रतिदिन करने से अन्त में हाथ पूरे पूरे जाने लगेंगे। छाती, गला और मस्तक हर हालत में एक सीध में रहना चाहिए; और शरीर खूब तना हुआ रहना चाहिए।

(२) धीरे धीरे नासापुटों से श्वास बाहर निकालो; और यथाशक्ति बाहर ही रोककर बाह्य कुम्भक करो।

(३) अब धीरे धीरे श्वास को भीतर खींचकर भीतर ही रोको।

(४) इस प्रकार अभ्यन्तर कुम्भक यथाशक्ति करने के बाद वायु को बाहर निकाल दो।

(५) यह अभ्यास थकावट आने तक बराबर करते रहो। इस अभ्यास से शरीर की आरोग्यता बढ़ती है।

४–शक्तिवृद्धि के लिए

(१) पहले पद्मासन से बैठो। गुदा को रूई से खूब भर दो।

(२) दाहने नथुने से वायु को धीरे धीरे खींचकर पूरक करो।

(३) ठोढ़ी को छाती पर रखकर दाहने हाथ से बायें पैर के अँगूठे को और बायें हाथ से दाहने पैर के अँगूठे को पकड़ो; और माथे को किसी घुटने में लगाकर कुम्भक करो।

(४) बायें नासापुट से रेचक करो।
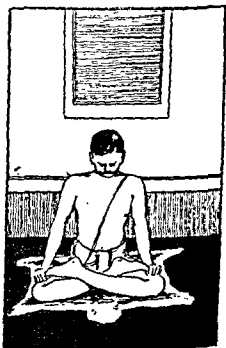
चित्र नं० १३

(५) इसी प्राणायाम को फिर करके अब की बार बायें से पूरक और दाहने से रेचक करो।

(६) इसी प्रकार प्रत्येक प्राणायाम में नासापुट बदलते लगभग एक घंटे तक यह व्यायाम करते रहना चाहिए।

५-स्मरणशक्ति और इच्छाशक्ति पढ़ाने के लिए

(१) बायें पैर की एंड़ी गुदा में भिड़ाओ। दाहने पैर की

चित्र नं० १७—सिद्धासन

ी जंघा पर रखो; और ठोड़ी को छाती से भिड़ाकर आँखें न्द करो।

(२) गहरी लम्बी श्वास की धारा खींचो और रेचक डालो।

(३) फिर कुम्भक और इसके बाद रेचक करो।

(४) क्रमशः बढ़ाते हुए इस व्यायाम को एक घंटे तक जाओ।

६—ठंडक से बचने के लिए

(१) बायां पैर गुदा के नीचे भिड़ाओ; और ठोड़ी छाती पर। फिर दोनों हाथों को बढ़ाकर सीध में फैले हुए दाहने पांव को पकड़ लो, और मस्तक को दाहने घुटने से भिड़ा दो। (चित्र नं० १५)

(२) बायें नथुने से धीरे धीरे वायुधारा को भीतर खींचकर पहले फेफड़े के नीचे के भाग को भरो, और दृढ़ इच्छा करो कि फेफड़े का निचला भाग शुद्ध वायु से भर रहा है। इससे पेट कुछ फूलेगा। इसके बाद उसी श्वास की धारा से—बिना कुम्भक या रेचक किये हुए—फेफड़े के मध्यभाग में श्वास पहुँचाओ। (संकल्पशक्ति बराबर दृढ़ रखो)। इस क्रिया से पेट कुछ पचकेगा, और छाती कुछ उभरेगी। इसके बाद उसी श्वासधारा के अन्तिम भाग से फेफड़े के ऊपरी भाग को भरो। इस क्रिया के प्रारम्भ करने से पहले कन्धों को कुछ ऊपर उठा लो। यह एक पूरक हुआ, जो लगभग आधे मिनट में हो जायगा।

(३) इसके बाद दृष्टि को नासिका के अग्रभाग पर जमाकर कुम्भक करो।

चित्र नं० १५—महामुद्रा और पश्चिमोत्तानासन

(४) फिर दाहने नासापुट से रेचक करो। चाहे जितना जाड़ा हो, एक घन्टे तक इस व्यायाम के करने से पसीना आ जाता है।

७-ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए

(१) चित्त होकर मृतासन की तरह लेट जाओ। कानों मोम से सनी हुई रुई से बिलकुल बन्द कर लो, जिससे के शब्द सुनाई न पड़े। दृष्टि नासिका के अग्रभाग पर रहे

चित्र नं० १३—मृतासन

(२) आध घंटे तक इसी स्थिति में रहते हुए रुक रुक कर ंधी सांस लेते रहो।

(३) इसके बाद आंखों की पुतलियां ऊपर चढ़ाकर भौंहों के च में दृष्टि को स्थिर करो। ऐसा करने से आंखें बन्द होने गेंगी। बन्द हो जाने दो।

८–दन्तरोग दूर करने के लिए

(१) बायां पैर दाहनी जंघा और दाहना बाईं जंघा पर ो और दाहने हाथ से दाहने पैर और बायें हाथ से बायें पैर के ठे को पकड़ो।

(२) पूरक मुहँ से इस प्रकार करो कि दांतों की दोनों पंक्तियां श्वास खींचने में सहायक हों और "सीसी" की आवाज के ान ध्वनि होने लगे।

(३) कुम्भक करके दोनों नथुनों से धीरे धीरे रेचक कर ।

(४) इस अभ्यास को पैंतालीस मिनट तक बढ़ा ले जाओ।

९–विचार-शक्ति की वृद्धि के लिए

(१) पहले पद्मासन से बैठो। (चित्र नं० १७)

(२) फिर दाहने हाथ से दाहने पैर और बायें हाथ से बायें पैर के अँगूठे को पकड़ो।

(३) बायें नथुने से पूरक करके कुम्भक करो और फिर दाहने से रेचक कर डालो।

(४) फिर दाहने से धीरे धीरे पूरक करके बायें से रे[illegible]
करो।

चित्र नं० १७—पद्मासन

(५) इस प्रकार क्रमशः रेचक पूरक का क्रम बदलते
पसीना निकलने तक, यह व्यायाम करते रहना चाहिए।

१०–वीर्यपुष्टि के लिए

(१) बायें पैर की एंड़ी गुदा के नीचे जमाओ और दाहना (बायें पैर की जंघा पर रखो। (देखो चित्र नं० १४)

(२) चित्त की धारणा नाभि-कमल पर स्थिर करो और सिका के किसी एक छिद्र से पूरक करो।

(३) फिर कुम्भक करके दूसरे छिद्र से रेचक कर डालो।

(४) इस प्रकार चौदह बार प्राणायाम करो।

(५) ध्यान रखो कि पहले जिस जिस छिद्र से पूरक और रेचक किया था, प्रत्येक बार उसी उसी छिद्र से पूरक और रेचक करना चाहिए।

सत्रहवां अध्याय

सूर्य-द्वारा प्रवाहित प्राणतत्व का शरीर के भिन्न भिन्न अंगों पर प्रभाव

प्राचीन ऋषि-मुनि-प्रणीत शास्त्र न्यूनाधिक परिमाण में एक दूसरे से सम्बन्ध रखते हैं। ज्योतिषशास्त्र और रसविद्या, दोनों प्राचीन ऋषियों के प्रणीत हैं। अतएव दोनों में अत्यन्त निकट सम्बन्ध है। रसविद्या के अनेक गूढ़ मर्मों को रससिद्धि-शास्त्र के आचार्यों ने ज्योतिषशास्त्र के साथ ऐसे विलक्षण ढंग से ओत-प्रोत किया है कि जिसे रसविद्या के पारंगत विद्वान् पुरुष अच्छी तरह जानते हैं। जिस प्रकार ज्योतिषशास्त्र का रसविद्या के साथ सम्बन्ध है उसी प्रकार योगशास्त्र के साथ भी उसका घनिष्ट सम्बन्ध है। इस विषय में विस्तार से विवेचन करने का यहां अवकाश नहीं है; और न यहां उसका कोई प्रयोजन ही है। हां, श्वास-विज्ञान, जो कि योगविद्या का एक अंग है, उसके साथ ज्योतिषशास्त्र का क्या सम्बन्ध है, इस विषय में हम अपने पाठकों के सामने थोड़ा सा विवेचन करना चाहते हैं।

श्वास-विज्ञान या प्राणायाम का मुख्य उद्देश शरीर और मन की सर्वोत्तम उन्नति कर के उसके द्वारा आध्यात्मिक उन्नति के ... आगे बढ़ाना है। जब शरीर रोग-रहित, विशुद्ध और सुदृ

है तब शरीर की धातुओं के द्वारा पोषित होनेवाला मन ... शुद्ध और बलवान हो जाता है। इसलिये शरीर और मन की सर्वोत्तम उन्नति करने के लिये प्रथम श्वास-विज्ञान के अभ्यास से शरीर को रोगरहित, विशुद्ध और सुदृढ़ कर लेना चाहिये; क्योंकि शरीर में 'प्राणतत्व' के विपुल परिमाण में ग्रहण करते रहने से ही शरीर जीवित रहता है। इसी से जीवन शुद्ध होता है; और मनुष्य पूर्णायु का भोग करता है।

प्राण में रहनेवाले जीवनतत्व से ही शरीर का प्रत्येक अवयव पोषित होता है। ब्रह्माण्ड में जो प्राण व्याप्त हो रहा है, वह शरीर को पोषण देने की शक्ति में हमेशा एक ही प्रकार का नहीं रहता है। जिस प्रकार सूर्य्य की उष्णता में और जीवनप्रद शक्ति में प्रत्येक ऋतु के अनुसार हमेशा अन्तर होता रहता है, उसी प्रकार प्राण की जीवन-प्रदायक शक्ति में भी, सूर्य्य और सूर्य्य-मण्डल के अन्य ग्रहों की गति के कारण—अथवा वैज्ञानिक परिभाषा में, हमारी पृथ्वी की गति के कारण—परिवर्तन होता रहता है। इस प्रकार का परिवर्तन होना स्वाभाविक भी है; क्योंकि प्राण में जीवन को पोषित करनेवाला जो सूक्ष्म विद्युन्मय तत्व रहता है वह अन्य कुछ नहीं, सूर्य्य तथा विविध ग्रहों में से प्रवाहित होनेवाला ओजस् है। जिस प्रकार पुष्प से सुगन्ध निकलकर वायु में चारों ओर फैलती रहती है, उसी प्रकार सूर्य्यादि ग्रहों से सूक्ष्म जीवनतत्व चारों ओर बहता रहता है; और वायु में सम्मिलित होकर पृथ्वी के जड़ और चेतन सभी प्राणियों और पदार्थों को पोषित करता है।

ग्रहों से, वायु के द्वारा, प्रवाहित होनेवाले इस तत्व ग्रहों की गति के अनुसार, भेद होता रहता है।

सूर्य्य और अन्य ग्रहों में से प्रवाहित होनेवाले इस प्राणजीवनतत्व में किसी समय मस्तिष्क को पोषित करनेवाला द्रव्य अधिक रहता है, तो किसी समय छाती, उदर तथा घुटने इत्यादि को पोषित करनेवाला द्रव्य विशेष पाया जाता है। इसी प्रकार समय समय पर भिन्न भिन्न इन्द्रियों अथवा मानसिक शक्तियों का पोषण करनेवाला प्राणतत्व प्रवाहित होता रहता है। इसलिये किस किस समय उस प्राणतत्व में शरीर के किन किन अवयवों और शक्तियों को पोषित करनेवाला तत्व अधिक रहता है, इस बात को जानकर उसी समय शरीर के उन अवयवों में प्राण की उस सूक्ष्म कला को, दृढ़ इच्छाशक्ति के द्वारा, प्रेरित करना चाहिए। तभी वे अवयव और वे शक्तियां विशेष रूप से पोषित तथा बलवान् होती हैं।

प्राचीन आर्य्यशास्त्रों का अध्ययन करनेवाले सभी पुरुष जानते हैं कि प्रत्येक जड़ तथा चेतन व्यक्ति के आसपास उसके अन्दर से प्रवाहित होनेवाला सूक्ष्म द्रव्य आच्छादित रहता है। इस आवेष्टन अथवा मंडल को साधारण पुरुष नहीं जान सकते। हां, योग-साधन के कितने ही अंगों में आगे बढ़े हुए पुरुष उस आच्छादित मंडल को प्रत्यक्ष रूप से देखते हैं।

प्रत्येक प्राणी और प्रत्येक पदार्थ से प्रवाहित होनेवाले इस द्रव्य का सूर्य्य-मंडल से प्रवाहित होनेवाले द्रव्य से सम्बन्ध

रहता है। सूर्य्य प्रति वर्ष बारह राशियों के केन्द्रस्थान में होकर भ्रमण करता है। इसलिये सूर्य्य से प्रवाहित होनेवाला द्रव्य भी बारह विभागों में विभाजित किया गया है। इन बारह विभागों में से प्रत्येक विभाग प्रत्येक प्राणी तथा प्रत्येक पदार्थ के सूक्ष्म द्रव्य के किसी न किसी विभाग के साथ सम्बन्ध रखता है। उदाहरण के तौर पर सूर्य्य जब मेष राशि में होकर गतिमान् होता है, तब सूर्य्य का मेषराशि से सम्बन्ध रखनेवाला जीवनतत्व पृथ्वी के ऊपर आता है, और प्रत्येक मनुष्य तथा प्रत्येक पदार्थ के किसी न किसी विभाग पर प्रभाव डालता है।

जिस प्रकार सूर्य्य से प्रवाहित होनेवाले जीवनतत्व के बारह विभाग किये गये हैं, उसी प्रकार प्रत्येक प्राणी और पदार्थ से प्रवाहित होनेवाले जीवन-तत्व के भी बारह विभाग किये गये हैं, और प्रत्येक विभाग के ऊपर सूर्य्य के सजातीय विभाग का प्रभाव पड़ता रहता है। यह योगविद्या और ज्योतिषशास्त्रका अटल सिद्धान्त है।

सूर्य्य जब मेष राशि पर होता है, तब उसमें मेषराशि का जीवनतत्व बहता है और मनुष्य-शरीर में मस्तिष्क तथा मुख के साथ उसका सम्बन्ध है। अतएव इन्हीं दो अंगों पर उसका विशेष प्रभाव पड़ता है।

सूर्य्य जब वृषभ राशि पर होता है, तब उसमें वृषभ राशि का जीवन-तत्व बहता है; और मनुष्य-शरीर में कंठ और ग्रीवा के साथ उसका सम्बन्ध रहता है। इस लिये इन्हीं दो अवयवों पर उसका विशेष प्रभाव पड़ता है।

सूर्य जब मिथुन राशि पर होता है, तब उससे मिथुन रा[शि] का जीवन-तत्व बहता है और मनुष्य-शरीर में उसका सम्ब[न्ध] भुजाओं, और कन्धों तथा फेफड़ों से रहता है। अतएव इ[न] अवयवों पर उसका प्रभाव पड़ता है।

सूर्य जब कर्क राशि पर होता है, तब उससे कर्क राशि का जीवन-तत्व बहता है; और मनुष्य-शरीर में उसका सम्बन्ध छाती, स्तन और जठर के साथ रहता है। इसलिए इन्हीं भागों पर उसका प्रभाव पड़ता है।

सूर्य जब सिंह राशि पर होता है, तब उससे सिंह राशि का जीवन-तत्व बहता है; और मनुष्य-शरीर में उसका हृदय, पीठ, और पृष्ठरज्जु के साथ सम्बन्ध होने से इन भागों पर उसका प्रभाव पड़ता है।

सूर्य जब कन्या राशि पर होता है, तब उससे कन्या राशि का जीवनतत्व बहता है; और मनुष्य-शरीर में अँतड़ियों तथा बड़ेनल के साथ उसका सम्बन्ध होने से इन भागों पर उसका प्रभाव पड़ता है।

सूर्य जब तुलाराशि पर होता है, तब उस से तुला राशि जीवन तत्व बहता है, और मनुष्य-शरीर में उसका कटि और [गुर्दों] के साथ सम्बन्ध होने से इन भागों पर उसका प्रभाव पड़ता है

सूर्य जब वृश्चिक राशि पर होता है, तब उससे वृश्चिक रा[शि] का जीवनतत्व बहता है; और मनुष्य-शरीर में उसका जननेन्द्रि[य] के साथ सम्बन्ध होने से इसी भाग पर उसका प्रभाव पड़ता है।

सूर्य जब धन राशि पर होता है, तब उससे धनराशि क[ा]

जीवनतत्व बहता है, और मनुष्य-शरीर में जंघा और नितम्ब के साथ उसका सम्बन्ध होने से इन भागों पर उसका प्रभाव पड़ता है।

सूर्य जब मकर राशि पर होता है, तब उससे मकर राशि का जीवनतत्व बहता है, और मनुष्य-शरीर में घुटनों के साथ उसका सम्बन्ध होने से इसी भाग पर उसका प्रभाव पड़ता है।

सूर्य जब कुम्भ राशि पर होता है तब उस से कुम्भराशि का जीवनतत्व बहता है; और मनुष्य-शरीर में पिंडुलियों के साथ उसका सम्बन्ध होने से इस भाग पर उसका प्रभाव पड़ता है।

सूर्य जब मीन राशि पर होता है, तब उससे मीन राशि का जीवन-तत्व बहता है; और मनुष्य-शरीर में पैर और पैरों के पंजों से उसका सम्बन्ध रहता है। इसलिए इन्हीं भागों पर उसका विशेष प्रभाव पड़ता है।

मेष, कर्क, तुला और मकर राशि के जीवन-तत्व का मस्तिष्क, जठर आंताशय, कटि, यकृत, और त्वचा के साथ सम्बन्ध है।

वृश्चिक, सिंह, वृषभ, और कुम्भ राशि के जीवन-तत्व का सम्बन्ध कंठ, हृदय, जननेन्द्रिय, गुर्दे और रुधिर के साथ है।

मिथुन, कन्या, धन, और मीन राशि के जीवन-तत्व का फेफड़े, छोटे-बड़े नल, ज्ञान-तंतु-व्यूह, और गर्भाशय के साथ सम्बन्ध है।

सूर्य से प्रवाहित होनेवाले इस प्राणतत्व से, प्राणायाम के द्वारा, शरीर के भिन्न भिन्न अंगों को कैसे पोषित करना चाहिए, इसका विचार अगले अध्यायों में किया जायगा।

अठारहवां अध्याय

सर्वाङ्ग-सौन्दर्य को बढ़ानेवाले तेरह प्राणायाम

यहां फिर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि प्रत्येक मनु की प्रकृति भिन्न भिन्न प्रकार की होती है। इसलिये प्रत्येक मनु को अपनी शारीरिक, मानसिक, तथा आध्यात्मिक उन्नति क के लिये, अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार, खास खास प्राणाय करने पड़ते हैं। ऐसे खास खास प्राणायामों के सूक्ष्म भेदों समझने के लिये तो किसी अच्छे योगी की ही शरण में जान चाहिए। इस काम में पुस्तक का उपयोग तो साधारण तौर से ही हो सकता है। इस लिए प्राणायाम की जो क्रियाएँ इस पुस्तक में दी गई हैं, उनका अभ्यास यदि स्वयं अपने आप करना हो, तो व सावधानी से ही करना चाहिये। यदि सावधानी न रखी जायगी, लाभ के बदले हानि होने की सम्भावना है। ऐसी दशा में प्रा याम की क्रियाओं को ही दोष देना उचित न होगा। वैद्य रो को ओषधि देता है; पर यदि सावधानी से, पथ्य के साथ, उस सेवन न किया जाय, तो इसमें वैद्य या उस ओषधि का कोई दो नहीं है। कभी कभी कोई प्राणायाम प्रकृति के अनुकूल भी नहीं पड़ता; और इस कारण भी लाभ कम होता है या कभी कभी हानि भी होती है। इसका ख्याल रखना चाहिए।

अवस्था, आहार-विहार, शरीर की गठन, प्रयत्न, हृदय की स्थिति इत्यादि अनेक कारण हैं, जिनसे अभ्यासी के अधिकार भेद पड़ता है। अतएव जो क्रिया एक मनुष्य के लिये शीघ्र-फलदायी होती है, वही क्रिया दूसरे मनुष्य के लिये महान् हानि-कर भी हो जाती है। अस्तु।

अगले अध्याय में जिस मास में जिस क्रिया के करने का आदेश है उसी मास में वह क्रिया करनी चाहिये। दूसरे महीनों में करने से हानि तो नहीं होती, तो भी एक खास निर्धारित समय में करने से वह काफी लाभ पहुँचाती है। शरीर का यदि कोई विशेष भाग आप को सुधारना है तो निर्धारित समय में करने से ही वह यथेष्ट लाभ प्रदर्शित करती है। यह बात प्रधान रूप से ध्यान में रखनी चाहिये।

मेष राशि की सत्ता प्रधान रीति से मस्तिष्क में प्रवर्तित है और कर्क, तुला तथा मकर राशि का भी मस्तिष्क से कुछ न कुछ सम्बन्ध है। अतएव मस्तिष्क को पोषण करनेवाली प्राणायाम की क्रिया जिस प्रकार मेष राशि के दिनों में की जा सकती है उसी प्रकार उक्त तीन राशियों के दिनों में भी कर सकते हैं।

ये क्रियाएँ दिन भर में दो बार कर लेना विशेष हितकारी है। एक प्रातःकाल स्नान के बाद, और दूसरी शाम को या रात को सोते समय। क्रिया करने का स्थान शुद्ध-वायु-युक्त होना चाहिये। वायु जितनी अधिक शुद्ध होगी, फल भी उतनी ही शीघ्रता से प्राप्त होगा। दोनों समय क्रिया करने में केवल दस दस मिनट

लगाना बस है। जो मनुष्य निर्बलता के कारण खड़े न रह स
हों उन्हें मानसिक दुर्बलता त्यागकर दृढ़ता धारण करनी चा
और "मैं बलवान् हूँ"—ऐसी भावना बार बार करके खड़े
का प्रयास करना चाहिये। क्रिया करते समय शरीर के
भाग में मानसिक एकाग्रता धारण करने का आदेश किया
है, उसी भाग में सावधानी के साथ वृत्ति को एकाग्र कर
रखना चाहिये। क्रिया का वास्तविक लाभ मानसिक एकाग्रता
ही प्राप्त होता है। मानसिक एकाग्रता के बिना; केवल क्रिया म
से, स्नायु बढ़ते हैं; परन्तु हमारा उद्देश केवल स्नायुओं को
बढ़ाने का नहीं है और न बड़े बड़े स्नायु-वाला पुरुष बलवान औ
तन्दुरुस्त होता है। उसके भी फेफड़े, हृदय और पचनेन्द्रियां निर्ब
रहती हैं। साधारण सी बीमारी आने पर ही, हृदय पर चर्बी
दबाव से, वह मर जाता है। इसलिये स्नायुओं को बढ़ानेवाली
क्रियाओं के साथ ही साथ हृदय, फेफड़े, इत्यादि जीवनप्रदायक
अवयवों को बलवान् करने के लिये मानसिक एकाग्रता की बड़ी
आवश्यकता है।

इन क्रियाओं के करते समय दूसरा नियम शारीरिक अवयवों
को दृढ़ रखने का है। इस पर भी खास तौर से ध्यान रखना चाहिये।
मनुष्य-शरीर में प्रति दिन करोड़ों परमाणु बेकार और सत्व-रहित
होते जाते हैं। वे सब यदि बाहर न निकाले जायँ तो अन्दर ही रहते हैं
और रुधिर की गति को रोककर परिणाम में वृद्धावस्था लाते हैं।
श्वास के रास्ते, पसीने के रास्ते, और मल को बाहर निकालनेवाले

न्य अवयवों के द्वारा, ये सत्व-रहित कोष प्रतिदिन, बहुत बड़े रिमाण में, बाहर निकल जाते हैं। फिर भी बहुत से अन्दर जाते हैं। शारीरिक परिश्रम करने से ये सत्व-रहित अणु ष्ट परिमाण में बाहर निकल जाते हैं। इसी कारण शारीरिक श्रम करनेवालों का शरीर मजबूत रहता है। परन्तु शारीरिक श्रम की जिन्हें असुविधा हो, उन्हें इन क्रियाओं में अपना रीर तना हुआ और दृढ़ रखकर बेकार अणु बाहर निकाल लना चाहिये। जब मनुष्य अपने शरीर के समस्त अवयवों को चकर तानता है, तब उसके शरीर के सब अणु संकुचित हो ते हैं; और पानी से भरी हुई बदली पर जरा सा दबाव पड़ने से स प्रकार उसमें से सब पानी बरस जाता है, उसी प्रकार इस क्रिया से शरीर में भरे हुए सब रूक्ष और बेकार अणु बाहर निकल जाते हैं। इससे ओज और स्फूर्ति के प्राणतत्व ज्ञानतंतुओं में सरलतापूर्वक बहने लगते हैं।

तीसरा नियम फेफड़ों में वायु पूर्णतया भरने का है। वायु से फेफड़ों को आधा भरने से नाना प्रकार के रोग होते हैं। इसलिये दीर्घ श्वास खींचकर वायु से फेफड़ों को पूर्णतया भर लेना चाहिये। जब दीर्घ श्वास खींचा जाता है, तब प्रथम उदर का भाग फूलकर बड़ा होने लगता है और फिर छाती का भाग विकसित होता है। श्वास-प्रश्वास के समय उदर, पसलियां, छाती के नीचे का भाग, तथा ऊपर का समग्र भाग विस्तृत हो, तब समझना चाहिये कि हम दीर्घ श्वास-प्रश्वास की क्रिया ठीक तौर से कर रहे

हैं। जब तक इस प्रकार स्वाभाविक रीति से श्वास-प्रश्वास
क्रिया सदैव न होने लगे, तब तक प्रत्येक मनुष्य को निम्नांकित क्रि
दिन में तीन बार दस-पन्द्रह मिनट अवश्य ही कर लेनी चाहि
रोगी मनुष्यों को बिछौने में लेटे हुए अथवा बैठे हुए यह क्रि
करनी चाहिये। रोगी लोग यदि दिन में दस बार यह क्रिया
पांच अथवा दस दस मिनट तक कर लेंगे तो बिना किसी प्रक
की दवाई के, अल्प समय में ही, आरोग्यता के सुख का अनुभ
करेंगे।

१—सर्वाङ्ग-सौन्दर्य-प्रदायक जीवनप्रद क्रिया

प्रथम वायु बाहर निकालकर फेफड़ों को पूर्णतया खाली क
दो। फिर एक लम्बी सांस लो कि जिससे छाती का भाग कं
रहे और उदर का भाग फूल जावे। इस प्रकार फेफड़ों को वायु से
पूर्णतया भर दो। फिर छाती आगे निकली हुई रखकर वायु अन्द
ही रोको। फिर उदर को संकुचित करके तथा ऊपर की ओर
खींच कर धीरे धीरे वायु बाहर निकालो। उदर संकुचित करने से
समस्त वायु बाहर निकल आती है। पुनः वायु श्वास के द्वारा
खींचो रोको और बाहर निकालो। क्रिया बार बार एक समान
गति से करते रहना चाहिये। छाती का भाग तना हुआ औ
आगे निकला हुआ रहना चाहिये। उसे किंचित् मात्र भी इध
उधर होलने न देना चाहिये। वायु नासिका से ही खींचना और
बाहर निकालना चाहिये। खींचने में, रोकने में, तथा निकालने में
[illegible]

व सेकंड खींचने में, चार-पांच सेकंड वायु को अन्दर रोक
खने में, और इतने ही सेकंड बाहर निकालने में लगाना चाहिये।
ों ज्यों फेफड़ों की शक्ति बढ़ती जायगी त्यों त्यों समय अपने-
ाप ही बढ़ता जायगा। बलात्कार से शक्ति के बाहर कुछ भी
करना चाहिये। श्वास लेते समय ऐसा दृढ़ संकल्प मन में
ारण किये रहो कि "जीवन-तत्व वायु के साथ हमारे शरीर के
न्दर खूब आ रहा है।" जिस समय वायु कुम्भक में रुकी हुई
। उस समय अपने मन की सम्पूर्ण शक्ति इसी संकल्प में लगाये
हो कि "अब हमारा शरीर इस प्राणवायु से जीवनीशक्ति को
़ब चूस रहा है।" इसी प्रकार वायु का रेचन करते समय यह
ंकल्प दृढ़ करो कि "अब हमारे शरीर से सम्पूर्ण बेकार और
रसत्व परमाणु बाहर निकले जा रहे हैं।

निम्नांकित विधि-वाक्यों का श्रद्धापूर्वक मनोमय उच्चार
त्यन्त लाभदायक है—"यह शुद्ध जीवन-तत्त्व-मय वायु मेरे शरीर
ो पूर्ण लाभ पहुँचा रही है। ओज और वीर्य्य, इस क्रिया के
ारा, मेरे शरीर में बढ़ रहे हैं। मेरा मन और शरीर दोनों इस
क्रिया के द्वारा खूब बलवान हो रहे हैं। मेरी मानसिक शक्तियां
ुझे बढ़ती हुई मालूम हो रही हैं। मैं अधिकाधिक बलवान् और
ुद्धिमान् होता जा रहा हूँ।"

इसके आगे लिखी जानेवाली बारह क्रियाएँ समस्त शरीर
को विकसित करने के लिये बतलाई गई हैं। जिस राशि में जिस
क्रिया के करने का आदेश हो वह ... ा के दिनों

में—ऊपर लिखे हुए तीनों नियमों को ध्यान में रखकर—
चाहिये। इन क्रियाओं के साथ उपर्युक्त "जीवन-प्रद दीर्घ
प्रश्वास" की क्रिया दिन में तीन बार अवश्य करनी चाहिये।

२—जंघा और नितम्ब का पोषण करनेवाली जीवनप्रद क्रिया

जंघा और नितम्ब में धन राशि की सत्ता प्रवर्तित है। इसलि
यह क्रिया धन राशि के दिनों में (२३ नवम्बर से २१ दि
तक) करनी चाहिये।

जमीन पर पैर फैलाकर लेट जाओ। दोनों हाथों को
के ऊपर औंधे, एक के ऊपर एक, रखो। फिर घुटनों को
बिना, अथवा पैरों की एँड़ियों को जमीन पर से उठाये
धीरे धीरे मस्तक को जमीन से १८ या २० इंच तक ऊँचा उठा
फिर धीरे धीरे मस्तक को असली हालत में, जैसा था
ही, जमीन पर रख दो। सिर ऊँचा करते समय इस प्रकार
धीरे धीरे, एक समान गति से, अन्दर खींचो कि प्रथम
का भाग फूले और दोनों फेफड़ों में वायु पूर्ण रीति से प्रवेश क
पुनः सिर नीचा करते समय दोनों फेफड़ों को पूर्ण रीति से खा
कर दो। इस प्रकार बार बार करते रहो।

दूसरे प्रकार से भी यह क्रिया की जाती है। दोनों हाथ
को सिर के नीचे तकिये के समान रखकर लेट जाओ। फि
... के ऊपर टिकी हुई रखकर, पैरों को घुटने में से

झुकाये बिना ही, पैरों को धीरे धीरे ऊँचे उठाओ—जब तक कि वे शरीर के कटि विभाग की सीध में न आ जावें तब तक ऊँचे उठाते रहो। जैसे सर्वाङ्गासन किया जाता है। इसके बाद धीरे धीरे पैर जमीन पर लाओ। पैरों को ऊँचे उठाते समय वायु फेफड़ों में, ऊपर लिखे अनुसार, भरते रहो; और नीचे लाते समय बाहर निकालते जाओ।

यह क्रिया करते समय मानसिक वृत्तियों को जंघा और नितम्ब में एकाग्र रखना चाहिये। शरीर के ये दोनों अवयव जैसे सुन्दर बनाने हों वैसा ही चित्र मन में कल्पित करना चाहिए।

निम्नांकित विधि-वाक्यों का मनोमय उच्चार अत्यन्त लाभदायक है:—"इस क्रिया से मैं बलवान् होता जा रहा हूँ। इसके द्वारा मेरे अणु अणु में जीवनतत्व व्याप्त हो रहा है। निःसत्व अणु मेरे शरीर से बाहर निकले जा रहे हैं; और उनके स्थान पर बलवान् तथा नूतन अणु प्रविष्ट हो रहे हैं।"

मिथुन, कन्या और मीन राशि की क्रियाएं करते समय भी शरीर के उपर्युक्त अवयवों के पोषण करनेवाली यह क्रिया, गौण रीति से, की जा सकती है।

३—घुटनों और पैरों का पोषण करनेवाली जीवनमद क्रिया

घुटनों और पैरों में मकर राशि की सत्ता का साम्राज्य है।

इसलिये यह क्रिया मकर राशि के दिनों में (२० दिसम्बर २० जनवरी तक) करनी चाहिये।

सीधे खड़े हो जाओ। पैरों को इकट्ठे कर एक दूसरे से मि हुए रखो। पैरों के अँगूठों को एक दूसरे से साधारणतया रखो। फिर एक हाथ की अँगुलियां दूसरे हाथ की अँगुलियों डालो और दृढ़ता से पकड़कर हाथों को सामने की ओर जोर चढ़ाओ। हाथों को इस प्रकार उल्टा दो कि सामने खड़ा हुआ मनुष्य हमारी हथेलियों को देखता रहे। फिर हाथ और पैरों के समस्त अवयवों को खूब तानों। हाथ-पैरों को लकड़ी के समान सख्त कर लेने पर उनके अवयव तन जाते हैं। फिर दाहिने पैर के स्नायुओं को अधिक तानकर पैर को जमीन से दो अथवा तीन इञ्च (कमर के भाग से लगाकर पैर के तल भाग तक) ऊँचा उठाओ। पैर को घुटने से टेढ़ा न होने दो और न बाईं या दाहिनी ओर झुकाओ। जमीन से दो-तीन इञ्च ऊँची अवस्था में भी स्नायुओं को जैसे के तैसे तने हुए रखना चाहिये। फिर दाहिने पैर को नीचे रखकर बायें पैर से भी यही क्रिया इसी प्रकार करो। इस प्रकार बार बार करते रहो। पैर को ऊँचा करते समय वायु को फेफड़ों में पूर्ण रीति से भरो; और पैर नीचे रखते समय, या अवयवों को शिथिल करते समय, वायु बाहर निकालो। क्रिया करते समय सारे शरीर को सीधा रखो, अर्थात् झुकने या झोले न खाने दो।

क्रिया करते समय मन को घुटनों और पैरों में एकाग्र करो।

साथ ही मन में ऐसी धारणा बांधो कि हमारे ये अवयव पुष्ट, सुन्दर और सुडौल हो रहे हैं।

क्रिया करते समय निम्नांकित विधि-वाक्यों का उपयोग करो—

"इस क्रिया से मेरे सारे शरीर का रक्त अस्खलित वेग से बह रहा है। मैं अपने शरीर को अक्षत यौवन और जीवन-तत्व से भरपूर देख रहा हूँ। इस क्रिया से मेरे शरीर के अन्दर नव-जीवन का संचार हो रहा है।"

मेष, कर्क और तुला राशि की क्रियाएं करते समय, उपर्युक्त अवयवों को पोषित करनेवाली यह क्रिया, गौण रीति से, करते रहने में कोई हर्ज नहीं है।

नं० ४—पिंडुली और टखने का पोषण करने-वाली जीवनप्रद क्रिया

पिंडुली और टखने के भाग में कुम्भराशि की सत्ता का साम्राज्य है। इसलिये यह क्रिया कुम्भराशि के दिनों में (२१ जनवरी से १९ फरवरी तक) करते रहना चाहिये।

सीधे खड़े हो जाओ। पैरों की एड़ियों को एक दूसरी से मिली हुई रखो; परन्तु दोनों अँगूठों के बीच में दस-बारह अंगुल अन्तर पड़ा रहे। दोनों हाथ नीचे लटकते हुए व सीना आगे की ओर तना हुआ रखो। फिर हथेलियां शरीर की ओर रखकर एक हाथ की अंगुलियां दूसरे हाथ की अंगुलियों में डालते हुए दोनों

इसलिये यह क्रिया मकर राशि के दिनों में (२० दिसम्
२० जनवरी तक) करनी चाहिये।

सीधे खड़े हो जाओ। पैरों को इकट्ठे कर एक दूसरे से
हुए रखो। पैरों के अँगूठों को एक दूसरे से साधारणतया
रखो। फिर एक हाथ की अँगुलियां दूसरे हाथ की अँगुलियों
डालो और दृढ़ता से पकड़कर हाथों को सामने की ओर जोर
चढ़ाओ। हाथों को इस प्रकार उल्टा दो कि सामने खड़ा हु
मनुष्य हमारी हथेलियों को देखता रहे। फिर हाथ और पैरों
समस्त अवयवों को खूब तानो। हाथ-पैरों को लकड़ी के सम
सख्त कर लेने पर उनके अवयव तन जाते हैं। फिर दाहिने पै
के स्नायुओं को अधिक तानकर पैर को जमीन से दो अथवा
तीन इञ्च (कमर के भाग से लगाकर पैर के तल भाग तक)
ऊँचा उठाओ। पैर को घुटने से टेढ़ा न होने दो और न
बाईं या दाहिनी ओर झुकाओ। जमीन से दो-तीन इञ्च ऊँची
अवस्था में भी स्नायुओं को जैसे के तैसे तने हुए रखना चाहिये।
फिर दाहिने पैर को नीचे रखकर बायें पैर से भी यही क्रिया इसी
प्रकार करो। इस प्रकार बार बार करते रहो। पैर को ऊँचा
करते समय वायु को फेफड़ों में पूर्ण रीति से भरो; और पैर नीचे
रखते समय, या अवयवों को शिथिल करते समय, वायु बाहर
निकालो। क्रिया करते समय सारे शरीर को सीधा रखो, अर्थात्
इधर-उधर झुकने या मोलने न पाने दो।

क्रिया करते समय मन को घुटनों और पैरों में एकाग्र करो।

थ ही मन में ऐसी धारणा बांधो कि हमारे ये अवयव पुष्ट, दर और सुडौल हो रहे हैं।

क्रिया करते समय निम्नांकित विधि-वाक्यों का उपयोग ो—

"इस क्रिया से मेरे सारे शरीर का रक्त अस्खलित वेग से रहा है। मैं अपने शरीर को अक्षत यौवन और जीवन-तत्व भरपूर देख रहा हूँ। इस क्रिया से मेरे शरीर के अन्दर नव-वन का संचार हो रहा है।"

मेष, कर्क और तुला राशि की क्रियाएं करते समय, उपर्युक्त अवयवों को पोषित करनेवाली यह क्रिया, गौण रीति से, करते रहने में कोई हर्ज नहीं है।

४—पिंडुली और टखने का पोषण करने-वाली जीवनप्रद क्रिया

पिंडुली और टखने के भाग में कुम्भराशि की सत्ता का साम्राज्य है। इसलिये यह क्रिया कुम्भराशि के दिनों में (२१ जनवरी से १९ फरवरी तक) करते रहना चाहिये।

सीधे खड़े हो जाओ। पैरों की एड़ियों को एक दूसरी से मिली हुई रखो; परन्तु दोनों अँगूठों के बीच में दस-बारह अंगुल अन्तर का रहे। दोनों हाथ नीचे लटकते हुए व सीना आगे की ओर तना हुआ रखो। फिर हथेलियां शरीर की ओर रखकर एक हाथ की अंगुलियां दूसरे हाथ की अंगुलियों में डालते हुए दोनों

हाथों के स्नायुओं को खूब तानो। फिर पैरों के अंगूठों पर ख
रहकर कमर से शरीर को झुकाकर जमीन की ओर शक्ति भ
झुको और पुनः मूल अवस्था में आ जाओ। क्रिया करते सम
केवल अँगूठों के बल पर ही खड़े रहना चाहिये। एँड़ियों के
जमीन पर तिलमात्र भी टिकने न देना चाहिये। इस प्रका
आठ-दस मिनट तक यह क्रिया करनी चाहिये। कमर से
शरीर को जमीन की ओर झुकाते समय फेफड़ों में वायु
पूर्णतया भरना चाहिये; और पुनः सीधे होते समय वायु को
बाहर निकालकर फेफड़ों को पूर्ण रीति से खाली कर देना
चाहिये।

क्रिया करते समय मानसिक वृत्ति पिंडुलियों और टखनों में एकाग्र करो; और ऐसा ध्यान मन में दृढ़ करो कि ये अवयव सुन्दर, पुष्ट, सुदृढ़ और सुडौल हो रहे हैं।

क्रिया करते समय निम्नांकित विधि-वाक्यों का उपयोग करना चाहिये :—

"मेरे पैर बलवान हैं। जीवन और शक्ति मेरे अन्दर बहुत बड़े परिमाण में संचित है। बल और जीवनीशक्ति से मेरा शरीर दृढ़ हो रहा है। इस क्रिया से मेरी शक्ति में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो रहा है।"

वृषभ, सिंह और वृश्चिक राशि की क्रियाएं करते समय उपर्युक्त अवयवों को पोषित करनेवाली यह क्रिया गौण रीति से करते रहें, तो किसी प्रकार की हानि नहीं है।

५—पैरों के पंजों और अंगुलियों को पोषित करने-वाली जीवनप्रद क्रिया

दोनों पैरों के पंजों और अंगुलियों में मीन राशि की सत्ता का साम्राज्य है। इसलिये यह क्रिया मीन राशि के दिनों (२० फरवरी से २० मार्च तक) करते रहना चाहिये।

दोनों पैरों के पंजों और हाथों की हथेलियों के बल पर शरीर को जमीन पर लम्बा करो। जैसे दण्ड पेलते समय किया जाता है। हथेलियों और पैरों के पंजों के सिवाय शरीर का दूसरा कोई भी भाग जमीन से लगने न देना चाहिये। फिर केवल हाथों को कुहनियों से झुकाकर शरीर को इस प्रकार नीचे की ओर झुकाओ कि केवल हड़पची जमीन पर टिक जाये।

सीना तथा घुटने जमीन पर टिकने न देना चाहिये। देशी कसरत में जिस प्रकार दण्ड पेलते हैं, उसी प्रकार शरीर को नीचे रखना चाहिए। अन्तर केवल इतना ही कि दण्ड पेलनेवाले सीना जमीन पर टिकाते हैं; और इस क्रिया में हड़पची को केवल जमीन का स्पर्श होता है। हाथों को सीधे करके पुनः खड़े हो जाओ अर्थात् मूल स्थिति में आ जाओ। शरीर को नीचे झुकाते समय, अर्थात् दण्ड पेलने की दशा में आते समय, दीर्घ श्वास ग्रहण करो और शरीर को ऊँचा करते समय श्वास बाहर निकालो।

एक दूसरे प्रकार के व्यायाम से भी ये अवयव बलवान्

किये जा सकते हैं। वह इस प्रकार है:—सीधे खड़े हो जाओ दोनों हाथों की हथेलियां शरीर की ओर रखकर हाथों को नी लटका दो। फिर स्नायुओं को तानकर मुट्ठियां बन्द करो; औ केवल पैरों की अँगुलियों के बल पर ही खड़े रहो। पैरों की अँगुलियों के बल पर खड़े होते समय हाथों और पैरों के स्नायुओं को तनी हुई अवस्था में रखो, और पुनः पैरों को जमीन पर टिकाते समय स्नायुओं को शिथिल अवस्था में रक्खो। ऐसा बार बार करते रहो। ऊँचे होते समय दीर्घ श्वास ग्रहण के स्नायुओं को ताने रहो, और नीचे होते समय श्वास निकालकर स्नायुओं को शिथिल करते रहो।

दोनों प्रकार के व्यायाम करते समय मानसिक पैरों में एकाग्र करना चाहिये। उनके पूर्ण आरोग्य तथा बनने की दृढ़ भावना रखनी चाहिये।

नीचे लिखे हुए विधि-वाक्यों का इस क्रिया करना चाहिये:—"मेरे सम्पूर्ण शरीर में का समावेश हो रहा है। जीवनतत्व का प्रवाह रहा है। मैं स्वास्थ्य का साक्षात अवतार पू मूर्तिमान स्वरूप हूँ।"

मिथुन, कन्या, और धन राशि की क्रियाएं करते ये दोनों क्रियाएं गौण रीति से करते रहने में हीं।

८—मस्तिष्क और मुखमंडल का पोषण करने-वाली जीवनप्रद क्रिया

मस्तिष्क और मुख-मंडल पर मेष राशि की सत्ता का साम्राज्य है। इसलिये यह क्रिया मेष राशि के दिनों में (२१ मार्च से १९ अप्रैल तक) करनी चाहिये।

सीधे खड़े हो जाओ। पैरों की एड़ियों को एक दूसरी से मिला-कर रखो। दोनों अँगूठों के बीच में दस-बारह अंगुल का अन्तर रखो। कंधों की सीध में बांये हाथ को बांयी ओर, और दाहिने हाथ को दाहिनी ओर फैलाओ। हथेलियां सीधी (चित) रखो। कमर की जगह से शरीर को साधारणतया बाहर निकालो। फिर हाथों की मुट्ठियां दृढ़ता से बन्द करते हुए स्नायुओं को खूब तानो, जिससे सारे शरीर के अंग-प्रत्यंग तन जावे। फिर दोनों हाथों को धीरे धीरे मस्तक के ऊपर ले जाकर मिलाओ। अवयवों को शिथिल न करके धीरे धीरे फिर असली हालत में आओ। हाथों को ऊँचा करते समय दीर्घ श्वास ग्रहण करो; और उनको नीचे करते समय धीरे धीरे श्वास बाहर निकालो। प्रतिदिन लगभग १० मिनट तक यह क्रिया इसी प्रकार करते रहो।

यह व्यायाम करते समय मन को मस्तिष्क में एकाग्र करो और ऐसी भावना दृढ़ करो कि इस प्राणवायु से हमारा मस्तिष्क, और मस्तिष्क के सारे परमाणु और मुखमंडल सुदृढ़ और सुन्दर हो रहा है। इस प्राणायाम से उपर्युक्त अङ्गों में रुधिर की गति

उत्तम प्रकार से होती है। इसके सिवाय ज्ञान-तंतुओं में बह वाला मल भी वहां अधिक परिमाण में बहने लगता है।

यह क्रिया करते समय निम्नांकित विधिवाक्यों का उपयो करना चाहियेः—"इस श्वसन-क्रिया से मुझे अत्यधिक लाभ हो रहा है। मेरे मस्तिष्क में रुधिर की गति उत्तम प्रकार से हो रही है। सब मलीन अणु उसमें से निकले जा रहे हैं। ज्ञान-तंतुओं का सत्व भी अवरोध के बिना, स्वतंत्र रीति से, बह रहा है। मेरा मस्तिष्क और चेहरा इस क्रिया से निर्मल, स्वच्छ और सुन्दर हो रहा है। उसके प्रत्येक अणु में आरोग्यता व्याप्त हो रही है।"

कर्क, तुला और मकर राशि की क्रियाएँ करते समय यह क्रिया गौण रीति से करते रहने में किसी प्रकार की हानि नहीं है।

७—ग्रीवा और कंठ का पोषण करनेवाली जीवनप्रद क्रिया

ग्रीवा और कंठ में वृषभ राशि की सत्ता का साम्राज्य है। इसलिये यह क्रिया वृषभ राशि के दिनों में (२० अप्रैल से २१ मई तक) करनी चाहिये।

सीधे तनकर खड़े हो जाओ। पैरों की एंड़ियों को एक दूसरी से मिलाकर रखो। दोनों अँगूठों के बीच में दस-बारह अंगुल का अंतर रहे। कंधों की सीध में दोनों हाथों को आगे की ओर फैलाओ। हथेलियां जमीन की ओर (पट) रखो। फिर सब स्ना-

[भु]जों को तानकर हाथों को सामने की ओर धीरे धीरे लाकर एक [दू]सरे से मिलाओ। फिर असली हालत में इसी प्रकार धीरे धीरे [ले] आओ। हाथों को आगे लाते समय दीर्घ श्वास ग्रहण करो; [औ]र पीछे ले जाते समय अवयवों को शिथिल कर श्वास बाहर [नि]काल दो। इस प्रकार दस-पंद्रह मिनट तक बार बार करते रहो।

क्रिया करते समय मानसिक वृत्ति को ग्रीवा और कंठ में [स्था]पित करो और यह भावना करो कि ये दोनों अवयव पूर्णारोग्य अवस्था में आ रहे हैं।

क्रिया करते समय निम्नांकित विधि-वाक्यों का उपयोग करना चाहिये:—"मेरी ग्रीवा और कंठ में रुधिर की गति बहुत उत्तम प्रकार से हो रही है। इस श्वसन-क्रिया से मेरी ग्रीवा और कंठ के प्रत्येक अणु और ज्ञान-तंतुओं को उत्तम प्रकार का पोषण मिल रहा है। ग्रीवा सुन्दर और कण्ठ मधुर हो रहा है। सभी बेकार अणु बाहर निकल रहे हैं और मुझे इस क्रिया से अत्यन्त लाभ हो रहा है।"

सिंह, वृश्चिक और कुम्भ राशि की क्रियाएं करते समय यह क्रिया गौण रीति से की जा सकती है।

८—हाथ, कंधे और फेफड़ों का पोषण करने-वाली जीवनप्रद क्रिया

हाथों, कंधों और फेफड़ों में मिथुन राशि की सत्ता का साम्राज्य है। इसलिये यह क्रिया मिथुन राशि के दिनों में (२२ मई से २१ जून तक) करनी चाहिये।

सीधे तनकर खड़े हो जाओ। पैरों की एंड़ियों और दोनों अँग
को नं० ७ की विधि से रखो। कंधों के सामने सीधी ला
में दोनों हाथों को फैलाओ। हथेलियों को चित रखकर, शरीर
सभी स्नायुओं को तानते हुए, मुट्ठियां दृढ़ता से बन्द करो। फि
कुहनियों की जगह से हाथों को सिर की ओर झुकाकर हाथों
अँगुलियों का मूल-संधि-स्थान कंधे पर टिकाओ। कंधों की ओ
हाथों को झुकाते समय दीर्घ श्वास ग्रहण करो और पुनः सी
करते समय श्वास बाहर निकालो। श्वास ग्रहण करते समय
स्नायुओं को तानो और श्वास निकालते समय, शिथिल करो।
प्रतिदिन लगभग दस मिनट, या शक्ति भर, बार बार यह
क्रिया करो।

इस क्रिया की एक दूसरी विधि इस प्रकार है। उपर्युक्त विधि
के अनुसार खड़े हो जाओ। हाथों को दोनों ओर लटकते हुए
रखो। हथेलियों का पहलू शरीर की ओर रहे, फिर दोनों हाथों
की मुट्ठियां बन्द करके शरीर के अवयवों को तानो। दाहिने हाथ
को कुहनी से झुकाकर कंधे तक धीरे धीरे ऊपर उठाओ और
फिर असली हालत में ले आओ। बायें हाथ से भी ऐसा ही
करो। अवयवों को दोनों ही अवस्थाओं में दृढ़ रखो। दोनों
हाथों को कंधे की ओर ऊपर लाते समय दीर्घ श्वास ग्रहण करो
और पुनः नीचे ले जाते समय श्वास बाहर निकालो। फिर
अवयवों को शिथिल कर पुनः इसी प्रकार बार बार शक्ति भर
करते रहो।

इस क्रिया को करते समय मानसिक वृत्ति कन्धों, हाथों और फेफड़ों में स्थिर रखो; और ऐसी भावना करो कि इस क्रिया से हमारे कन्धे, हाथ और फेफड़े खूब बलवान, पुष्ट, और सुडोल हो रहे हैं।

क्रिया करते समय निम्नांकित विधि-वाक्यों का उपयोग करना चाहिये:—"इस प्राणायाम से मेरे फेफड़ों की शक्ति बढ़ रही है, मेरे फेफड़े अधिकाधिक बलवान् होते जा रहे हैं (कन्धों या हाथों में मन एकाग्र किया हो, तो फेफड़ों के स्थान में उन्हीं अवयवों की कल्पना करनी चाहिए) । इस श्वसन-क्रिया से मुझे वास्तविक आरोग्यता प्राप्त हो रही है।"

कन्या, धन, और मीनराशि की क्रियाएं करते समय यह क्रिया गौण रीति से की जा सकती है।

९-छाती, स्तन, और जठर का पोषण करने-वाली जीवनप्रद क्रिया

छाती, स्त्रियों के स्तन, और जठर में कर्कराशि की सत्ता का साम्राज्य है। इसलिये यह क्रिया कर्कराशि के दिनों में (२१ जून से २३ जुलाई तक) करनी चाहिये।

सीधे तनकर खड़े हो जाओ। पैरों की एड़ियां एक दूसरी से मिली हुई रखो। दोनों अँगूठों के बीच में दस-बारह अंगुल का अन्तर रखो। कन्धे से सीधी लाइन में दोनों हाथों को आगे फैलाओ। हथेलियों का भाग जमीन की ओर रखकर

दोनों मुट्ठियों को बन्द करो। शरीर के सभी स्नायुओं को तान
फिर लम्बी सांस खींचो कि उदर के तल भाग से लेकर छाती
ऊपर के भाग तक वायु भर जाय। श्वास ग्रहण करते समय धी
धीरे दोनों मुट्ठियों को गोलाकार घुमाते हुए चित करो। फिर उ
को संकुचित कर वायु को बाहर निकाल दो। वायु बाहर निकाल
समय पुनः मुट्ठियों को धीरे धीरे गोलाकार घुमाकर असल
हालत में लाओ। सभी अवस्थाओं में शरीर के स्नायुओं के
तना रखना चाहिये। केवल श्वास बाहर निकाल देने के बाद
स्नायुओं को शिथिल करना चाहिए। इस प्रकार आठ या दस
मिनटों तक यथाशक्ति बार बार करते रहो।

इस क्रिया की दूसरी विधि इस प्रकार है:—उपर्युक्त रीति
से खड़े हो जाओ। फिर लड़के खेल में जिस तरह घोड़ा बनते
हैं, उस तरह कमर झुकाकर आगे की ओर झुको। झुकते समय
शरीर के ऊपर का भाग पैरों के साथ टिक जायगा। फिर इसी
स्थिति में रहकर हाथों को ऊपर की ओर इस प्रकार लाओ कि
उनके पृष्ठ भाग एक दूसरे से मिले हुए रहें। एक हाथ की
अँगुलियां दूसरे हाथ की अँगुलियों से मिला दो। हाथ ऊपर
लाते समय दीर्घ श्वास ग्रहण करो और नीचे ले जाते समय
श्वास बाहर निकालो। श्वास ग्रहण करते समय स्नायुमंडल को
तना हुआ रखो; और श्वास निकालने के समय शिथिल रखो।
इस प्रकार जब तक थकावट न मालूम हो, बार बार करते रहो।

और स्तनों में एकाग्र करो और फिर ऐसा संकल्प करो कि हमारे उपर्युक्त अंग इस क्रिया से पोषित होकर बलवान् हो रहे हैं।

इन क्रियाओं को करते समय निम्नांकित विधि-वाक्यों का उपयोग करना चाहिये—"जो वायु मैं श्वास के द्वारा ग्रहण कर रहा हूँ उसके अन्दर मेरे जीवन के लिए उपयोगी तत्त्व समन्वित हैं। इसलिये इसको ग्रहण करने से मैं अपने शरीर के अन्दर जीवन-तत्त्व को ही ग्रहण कर रहा हूँ। मेरी छाती तथा जठर अत्यन्त बलवान् हैं (स्त्रियों को अपने स्तनों की ओर ध्यान रखना चाहिये)—मैं अपने अन्दर नूतन बल और नूतन जीवन का अनुभव कर रहा हूँ।"

मेष, तुला और मकर राशि की क्रियाएं करते समय ये क्रियाएं गौण रीति से की जायँ, तो बहुत लाभ होता है।

१०—हृदय, पीठ और पृष्ठरज्जु का पोषण करने-वाली जीवनप्रद क्रिया

हृदय, पीठ और पृष्ठरज्जु में सिंह राशि की सत्ता का प्राधान्य है। इसलिये यह क्रिया सिंह राशि के दिनों में (२२ जुलाई से २३ अगस्त तक) करनी चाहिये।

सीधे खड़े हो जाओ। हाथों को दोनों ओर लटकते हुए रखो। मुट्ठी सामने की ओर तनी हुई रखो। हथेलियों का भाग शरीर की ओर रखकर मुट्ठियों को बन्द करो। फिर पैर बिलकुल न हिलने पावें; और कमर से शरीर को दाहिनी ओर जितना भी

झुका सको, झुकाओ। दाहिनी ओर झुकते समय बायें हाथ की मुट्ठी की अँगुलियां (बायें हाथ की कुहनी से झुकाकर) बगल के गड्ढे में टिका दो। फिर पहले की अवस्था में आकर बांयी ओर इसी प्रकार कमर से झुको और दाहिने हाथ को उँचा कर मुट्ठी की अँगुलियों को, उपर्युक्त रीति से, बगल के गड्ढे में टिकाओ। इस व्यायाम में स्नायुओं को तानने की बिलकुल आवश्यकता नहीं है। शरीर दाहिने-बांयें ओर झुकाते समय दीर्घश्वास बाहर निकालो और सीधा करते समय श्वास ग्रहण करो।

इस क्रिया की दूसरी विधि इस प्रकार है—सिर के नीचे दोनों हाथों की हथेलियां चित रखकर लेट जाओ। शरीर के स्नायु ताने रहो। फिर उदर और फेफड़ों को पूर्णरीति से भरते हुए दीर्घश्वास ग्रहण करो। इसी प्रकार उनको पूर्णरीति से खाली करने के लिए वायु बाहर निकालो। फिर स्नायुओं को शिथिल कर दो। इस प्रकार जब तक थकावट मालूम न हो, बार बार करते रहो।

इन क्रियाओं को करते समय हृदय, पीठ और पृष्ठरज्जु में मानसिक वृत्ति स्थिर रखो और ऐसा ख्याल बांधो कि यह तीनों भाग पूर्ण आरोग्य अवस्था में हैं।

क्रिया करते समय निम्नांकित विधि-वाक्यों का उपयोग करना चाहिए—"मेरे हृदय की क्रिया बहुत ही उत्तम प्रकार से चल रही है। प्रत्येक दीर्घश्वास मेरे हृदय को बलवान बना रहा है, और मेरे शरीर के प्रत्येक अणु को बहुत ही अच्छा पोषण [illegible]

समय इन विधि-वाक्यों में उक्त दोनों शब्द सम्मिलित कर लेना चाहिये)।

वृषभ, वृश्चिक, और कुम्भ राशि की क्रियाएं करते समय इन क्रियाओं को भी गौण रीति से करने की इच्छा हो तो कर सकते हैं।

११–उदर और छोटे-बड़े नलों को पोषित करने-वाली जीवनप्रद क्रिया

उदर तथा छोटे-बड़े नलों में कन्याराशि की सत्ता का साम्राज्य है। इस लिये यह क्रिया कन्याराशि के दिनों में (२२ अगस्त से २२ सितम्बर तक) करनी चाहिये।

सीधे खड़े हो जाओ। हाथों को इस प्रकार नीचे लटकते हुए रखो कि हथेलियां बाहर की ओर रहें। मुट्ठियों को बन्द करो। हाथों और पैरों को सम्पूर्ण रीति से तना रखो। फिर उदर पूर्ण रीति से भर जावे, इस प्रकार दीर्घ श्वास ग्रहण करो। वायु को कुछ समय तक रोक रखो। फिर उदर को इस प्रकार सिकोड़ो और फुलाओ कि वायु छाती से उदर में घूमती रहे। श्वास बाहर निकालने के पहिले इस प्रकार आठ या दस बार करो। फिर अवयवों को शिथिल करो। इस प्रकार जब तक थकावट न मालूम हो, बार बार करते रहो।

यह क्रिया करते समय चित्तवृत्ति को उदर तथा छोटे-बड़े नलों में एकाग्र रखो; और यह संकल्प मन में धारण करो कि हमारे ये अंग पूर्ण बलवान् और सुन्दर बन रहे हैं।

क्रिया करते समय निम्नांकित विधि-वाक्यों का म[illegible]
करना चाहिये:—"इस क्रिया से मेरी पचनेन्द्रिय सबल ब[illegible]
हो रही है; और उसके बलवान् होने से सारा शरीर बलवा[illegible]
रहा है। मेरे सारे शरीर में एक अप्रतिहत गति से बह रहा है[illegible]

मिथुन, धन, और मीन राशि की क्रियाएँ करते समय [illegible]
क्रिया नौलु रीति से की जा सकती है।

१२-मूत्रागार और कटि-प्रदेश का पोषण करके

[illegible]

के अँगूठे को स्पर्श करते समय श्वास बाहर निकालो और फिर खड़े होते समय श्वास को अन्दर ग्रहण करो। इस प्रकार आठ-दस बार, या जब तक थकावट न मालूम हो, करते रहो।

यह क्रिया करते समय वृत्ति को मूत्राशय और कटिप्रदेश में एकाग्रतापूर्वक स्थापित करना चाहिये; और यह धारणा बांधना चाहिये—"हमारे ये अवयव जीवनतत्व के द्वारा पूर्ण बलवान् हो रहे हैं।"

इस क्रिया में निम्नांकित विधि-वाक्यों का उपयोग करना चाहिये—"प्राणवायु ही जीवन और आरोग्यता है। प्रत्येक श्वास ग्रहण करते समय मैं अपनी आरोग्यता और जीवनी शक्ति में वृद्धि कर रहा हूँ। मेरा मूत्राशय अपना कार्य उत्तम प्रकार से कर रहा है; और उसका स्वास्थ्य अच्छी दशा में है। मेरा कटि-प्रदेश सुदृढ़ और सुन्दर बन रहा है।

मेष, कर्क और मकर राशि की क्रियाएँ करते समय भी यह क्रिया गौण रीति से की जा सकती है।

१३—जननेन्द्रिय का पोषण करनेवाली जीवनघट क्रिया

जननेन्द्रिय में वृश्चिक राशि की सत्ता का साम्राज्य है। इससे यह क्रिया वृश्चिक राशि के दिनों में (२२ अक्टूबर से २२ नवम्बर तक) करनी चाहिये।

सीधे खड़े हो जाओ। दोनों हाथों को नीचे लटकाये रहो। मुट्ठियां दृढ़ता से बांध-कर स्नायुओं को तानो। दाहिने पैर को

जमीन से कुछ नाममात्र को ऊँचा करो; परन्तु घुटने को सम रीति से तना हुआ और सीधा रखो। शरीर का सब वजन बांयें पर रखो। फिर कमर की सन्धि से दाहिने पैर को बांयी ओर घुमाकर, जितनी भी दूर ले जा सको, ले जाओ। फिर इसी प्रकार गोलाकार रीति से घुमाकर दाहिनी ओर लाओ। यह क्रिया करते समय शरीर को मोले न खाने देना चाहिये; और न पैर को जमीन पर टिकाना चाहिये। फिर दाहिने पैर के सहारे खड़े होकर बांयें पैर से यही व्यायाम करो। दोनों पैरों का व्यायाम पूरा हो जाने के बाद अवयवों को शिथिल करो। व्यायाम करते समय सभी अवस्थाओं में, एक समान रीति से, दीर्घ श्वास-प्रश्वास ग्रहण करना और छोड़ना चाहिये। इस प्रकार पांच-सात मिनट तक अथवा जब तक थकावट मालूम न हो, यह क्रिया करनी चाहिये।

यह व्यायाम करते समय मानसिक वृत्तियां जननेन्द्रिय के ऊपर एकाग्र करो; और ऐसी भावना करो कि वह भाग पूर्णारोग्य अवस्था में है।

इस क्रिया में निम्नांकित विधि-वाक्यों का उपयोग करना चाहियेः—"मैं बलवान् और पूर्ण वीर्यवान् हूँ। यह जीवनप्रद क्रिया मुझे अत्यन्त लाभ पहुँचा रही है। मुझे अपने शरीर में नवीन जीवन और पुरुषार्थ का भान हो रहा है।"

वृषभ, सिंह, और कुम्भ राशि की क्रियाएँ करते समय यह क्रिया गौण रीति से चाहें तो कर सकते हैं।

उन्नीसवां अध्याय

किन किन प्राणायामों से कौन कौन रोग नाश होता है

नाना प्रकार के शारीरिक रोगों से छुटकारा पाने के लिये इस पुस्तक के पिछले अध्याय में दी हुई तेरह प्राणायाम-क्रियाओं का उपयोग करना चाहिये। कौन कौन से रोगों में कौन कौन सी क्रियाओं का उपयोग लाभप्रद सिद्ध हो चुका है, इस विषय की एक तालिका नीचे दी जाती है।

इन क्रियाओं के साथ साधारण व्यायाम करते रहने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

रुधिर की न्यूनता:—पिछले अध्याय में दी हुई "सर्वाङ्ग-सौन्दर्य-प्रदायक जीवनप्रद क्रिया" करनी चाहिए। इसके सिवाय बारहों महीने की बारहों क्रियाओं का भी समयानुसार अभ्यास करना चाहिये।

खून की खराबी:—उसी अध्याय में वर्णित सार्वाङ्ग-सौन्दर्य-प्रदायक क्रिया तथा उसके बाद की नं० ४, नं० १२ की क्रियाएँ करनी चाहिएँ।

मन्दरुधिराभिसरणः—उसी अध्याय की नं० ५ नं० ६ नं० ८ और नं० १० की क्रियायें करनी चाहियें।

श्वास, काम, और खाँसी इत्यादि :—इसमें सर्वाङ्ग सौन्दर्यवाली क्रिया तथा नं० ५ नं० ८ और नं० ११ वाली क्रियाएँ विशेष लाभकारी हैं।

बड़े नल से सम्बन्ध रखनेवाले रोगः—नं० ९ और नं० ११ वाली क्रियाएँ करनी चाहियें।

श्लेष्मा, सरदी, और जुकामः—नं० ६, ७, ८ की क्रियाएँ करने से ये रोग दूर होते हैं।

कोष्ठबद्धताः—नं० ९, ११, और १२ की क्रियाएँ विशेष लाभदायक हैं।

मन्दाग्निः—नं० ५, ११ और सर्वाङ्ग-सौन्दर्यवाली क्रिया भी लाभदायक है।

मलोदरः—नं० ४, ५, ६, और ८ वाली क्रियाएँ करनी चाहिएँ।

अतीसारः—नं० ९ और ११ की क्रियाएं उपयोगी हैं।

नेत्र और कान के रोगः—नं० ६ और ७ की क्रियाएँ करनी चाहिए।

स्त्रियों के रोगः—नं० ८ और ९ की क्रियाएँ लाभदायक हैं।

जननेन्द्रिय के रोगः—नं० ८, ९, १० की क्रियाएँ करनी चाहियें।

रक्तवातः—नं० ५ और ८ की क्रियाएँ तथा सर्वाङ्ग-सौन्दर्य-वाली क्रिया करनी चाहिये।

सिर का दर्दः—नं० ६ और ७ की क्रियाओं से विशेष लाभ होगा।

मृगीः—नं० ६, १० और १३ की क्रियाओं से लाभ होगा।

हृदय के रोगः—नं० ४ और १० की क्रिया विशेष उपकारी है।

निद्रा-नाशः—नं० ५, ६, ७ और ११ की क्रियाएं विशेष लाभ पहुँचाती हैं।

मूत्राशय के रोगः—नं० ३, १०, १२ की क्रियाओं से लाभ होगा।

यकृत के रोगः—नं० १, २, ५, ११ की क्रियाएँ विशेष लाभकारी होंगी।

कमर का दर्दः—नं १, २, १०, १२ की क्रियाएँ बहुत उपयोगी हैं।

मानसिक अशान्तिः—नं० १, ६, ७, ११ की क्रियाएँ लाभदायक हैं।

मलेरिया ज्वरः—नं० १,२,७, १२ की क्रियाएँ उपकारी हैं।

ज्ञान-तन्तुओं की निर्बलताः—नं० १, ७, ८ और ११ की क्रियाएँ करनी चाहियें।

वातशूल:—नं० ५, ६, ७ की क्रियाएं लाभकारी हैं।

सन्धिवात:—नं० ३, ५, ६, ९, १० की क्रियाएं विशे उपकारी हैं।

त्वचा के रोग:—नं० ३, ७, ११ की क्रियाएँ करनी चाहिए।

पेट के रोग:—नं० ९, ११, १२ की क्रियाएँ करनी चाहियें।

कंठ के रोग:—नं० ६, ७ की क्रियाएँ लाभ करेंगी।

कमज़ोरी:—नं० १ और १० की क्रियाएँ करनी चाहियें।

यहां यह नियम ध्यान में रखना चाहिये कि ऊपर जिन जिन व्याधियों के लिये जो जो क्रियाएँ बतलाई गई हैं, वे सभी प्रत्येक मनुष्य के लिये आवश्यक नहीं हैं। परन्तु साधारण तौर पर इन क्रियाओं के करने से उपर्युक्त रोग अवश्य दूर हो जाते हैं। अपनी अपनी सुविधा के अनुसार इनका उपयोग करना चाहिये। आहार-विहार में नियमित रहना हर हालत में बहुत आवश्यक है। आहार-विहार में संयम रखकर प्राणायाम की कसरत करने से कोई भी रोग पास नहीं फटकेगा।

बीसवां अध्याय

प्राणायाम के द्वारा शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के साधन

स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण, ये चार प्रकार के शरीर मनुष्य के होते हैं। इसी प्रकार राशि-चक्र भी चार भागों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक विभाग में तीन तीन राशियों का समावेश किया गया है। इन तीन तीन राशियों के समूह को "त्रिपुटी" कहते हैं। इस प्रकार कुल राशियाँ बारह हैं, और त्रिपुटियां चार। पहिली पृथ्वीतत्व की त्रिपुटी, दूसरी जलतत्व की त्रिपुटी, तीसरी वायुतत्व की त्रिपुटी और चौथी अग्नितत्व की त्रिपुटी। ये चारों त्रिपुटियां मनुष्य के उपर्युक्त चारों शरीरों के साथ सम्बन्ध रखती हैं। पृथ्वीतत्व की त्रिपुटी का सम्बन्ध स्थूल शरीर से, जलतत्व की त्रिपुटी का सम्बन्ध सूक्ष्म शरीर से, वायुतत्व की त्रिपुटी का सम्बन्ध कारण शरीर से, और अग्नितत्व की त्रिपुटी का सम्बन्ध महाकारण शरीर से रहता है। इस स्पष्टीकरण से अब चारों शरीरों के विकास के लिये कौन कौन श्वसन-क्रियाएँ, किस प्रकार से, अधिक लाभप्रद होती हैं, यह साधारण प्रयास से ही समझा जा सकता है।

प्रत्येक त्रिपुटी में तीन तीन राशियों का समावेश है। अतएव उनमें जो श्वसन-क्रिया प्रत्येक मास में की जाती है, उसका निम्नांकित कार्यों में उपयोग करना चाहिये।

१—स्थूल शरीर का विकास

वृषभ, कन्या, और मकर यह तीनों पृथ्वी-तत्व की राशियां हैं। इससे २० अप्रैल से २२ मई तक, २२ अगस्त से २२ दिसम्बर तक, और २१ दिसम्बर से २० जनवरी तक—इस पुस्तक में लिखी हुई श्वसन-क्रिया करने से स्थूल शरीर का विकास उत्तम प्रकार से हो सकता है। यों तो व्यायाम करना सदैव लाभदायक है; परन्तु इन तीन महीनों में किये जानेवाले व्यायाम से पिंडुलियां विशेष बलवान् होती हैं। अन्य महीनों में व्यायाम जितना लाभ पहुँचाता है उससे कहीं अधिक लाभ पृथ्वीतत्व की इन तीन राशियों में पहुँचाता है। इन तीन महीनों में व्यायाम करने से स्त्रियों को अपने शरीर में आश्चर्यजनक परिवर्तन और सुधार मालूम होता है।

शरीर के जिन अवयवों को बलवान् करना हो उन अवयवों में मानसिक वृत्तियां एकाग्र करके इन तीन महीनों में दीर्घ श्वास-प्रश्वास लेना चाहिये। फेफड़ों को बलशाली बनाने की इच्छा रखनेवाले लोगों को फेफड़े में मानसिक वृत्तियां स्थिर करके, फिर दीर्घ श्वास-प्रश्वास लेना चाहिये। इसी प्रकार उदर, यकृत, मूत्राशय इत्यादि अवयवों को बलवान करने की

रखा हो, तो उनमें वृत्ति को एकाग्र करके दीर्घ श्वास-प्रश्वास लेना चाहिये। जिन लोगों की कमर झुक गई हो, उनको चाहिए कि वे एकदम सीधे बैठने की कोशिश करें; और फिर उस भाग को सीधा कल्पित करके दीर्घ श्वास-प्रश्वास ग्रहण करें। इस प्रकार जिन जिन अवयवों में जो जो त्रुटियां हों, उनको दूर करने के लिए, उन अवयवों को सुन्दर निर्दोष, और पूर्ण आरोग्यमय कल्पित करना चाहिए। फिर यह धारणा करके कि हमारे ये अंग हमारे विचारानुसार ही सुन्दर और निर्दोष हो रहे हैं, दीर्घ श्वास-प्रश्वास ग्रहण करना चाहिए। नेत्रों को तेजस्वी बनाने की इच्छा रखनेवाले मनुष्यों को नेत्रों में वृत्तियां एकाग्र कर, नेत्रों के तेजस्वी स्वरूप की कल्पना करते हुए, दीर्घ श्वास-प्रश्वास लेना चाहिए। पिछले अध्यायों में जिस राशि में जिस क्रिया के करने का आदेश है, वह क्रिया करनी चाहिये। इसी प्रकार प्राणायाम के दूसरे व्यायाम भी, जो अपनी प्रकृति के अनुकूल हों, नियमानुसार करते रहना चाहिए। पृथ्वीतत्व का व्यायाम करने का एक ऐसा प्रभावशाली उपाय है कि जिससे शरीर के प्रत्येक अंग की व्यंगता दूर हो जाती है; और सर्वाङ्ग-सौन्दर्य प्राप्त होता है।

२—सूक्ष्म शरीर का विकास

मीन, कर्क और वृश्चिक, ये तीनों जलतत्व की राशियां हैं। इससे १९ फरवरी से २१ मार्च तक, २१ जून से २२ जुलाई तक,

और २३ अक्टूबर से २२ नवम्बर तक सूक्ष्म शरीर की शक्तियों का विकास उत्तमता से होता है। इसलिये जो मनुष्य दूरदर्शन, दूरश्रवण, इत्यादि शक्तियों को प्राप्त करने की इच्छा रखते हों, उन्हें उपर्युक्त महीनों में आग्रह और श्रद्धापूर्वक क्रियाएँ करनी चाहियें। इन तीन महीनों में सूर्य के किरणों की सत्ता मनुष्य के सूक्ष्म शरीर पर प्रधान रीति से रहती है, इसलिए उक्त शरीर की शक्तियों का अच्छा विकास होता है। तात्पर्य यह है कि यह सत्ता मानसिक विकारों को दूर करने में काफी प्रभाव रखती है। इसलिए मनुष्य के मन में उठनेवाले भिन्न भिन्न मनोविकारों को शान्त करने का प्रयत्न भी इन्हीं तीन महिनों में विशेष रूप से हो सकता है। इसलिये जलतत्व की राशियों में भी संयम करने के लिये अधिकाधिक उत्साह से प्रवृत्त होना चाहिये। उक्त महीनों में दीर्घ श्वास-प्रश्वास लेना और मानसिक वृत्तियों को लक्ष्य स्थान पर स्थिर रखना विशेष उपयोगी होगा।

३—कारण शरीर का विकास

मिथुन, तुला, और कुम्भ, ये तीनों वायुतत्व की राशियां हैं। इसलिये २० जनवरी से १९ फरवरी तक, २२ मई से २१ जून तक, और २३ सितम्बर से २२ अक्टूबर तक की जानेवाली श्वसन-क्रियाएं कारण (लिंग) शरीर की शक्तियों का उत्तम प्रकार के विकास करती हैं। विद्यार्थियों को, तथा किसी भी प्रकार की

धन करनेवाले सभी मनुष्यों को, इन राशियों में की जानेवाली श्वसन-क्रियाएं अधिक फलप्रद होती हैं। दीर्घ श्वास प्रश्वास लेने से लेखकों को, अन्य महीनों की अपेक्षा, उक्त महीनों में अधिक विचार-स्फूर्ति होती है और यदि वे चाहें तो काफी मानसिक परिश्रम कर सकते हैं। मानस चिकित्सा करनेवाले वैद्य, अध्यापक और वक्ता, तथा गायक इत्यादि लोगों को उपर्युक्त अवधि में की हुई श्वसन-क्रिया महान् लाभप्रद होती है। श्वसन-क्रिया के समय फेफड़ों को, वायु के द्वारा, उदर के भाग से प्रारम्भ करके, पूर्ण रीति से भरना और फिर धीरे धीरे पूर्ण रीति से खाली करना चाहिए। मन को निश्चित लक्ष्य स्थान पर एकाग्र रखना चाहिए। इससे उनको अपने कार्यों में पूर्ण सफलता मिलेगी।

४–महाकारण शरीर का विकास

मेष, सिंह और धन, ये तीनों अग्नितत्व की राशियां हैं। इस लिये २१ मार्च से १९ अप्रैल तक, २२ जुलाई से २२ अगस्त तक, और २२ नवम्बर से २१ दिसम्बर तक की जानेवाली श्वसन-क्रियाएं महाकारण शरीर की शक्तियों का विकास उत्तम प्रकार से करती हैं। इन दिनों में मनुष्य के प्राण का आध्यात्मिक तत्व के साथ बहुत ही गहरा सम्बन्ध रहता है। इससे आध्यात्मिक शक्तियों का विकास करने के लिये इस समय की श्वसन-क्रिया बहुत लाभदायक होती है। उच्च आध्यात्मिक जीवन, संयम की शक्ति, उच्च प्रकार की दिव्य दृष्टि, हृदय के अन्दर आकाशवाणी का श्रवण,

भगवान् का साक्षात् दर्शन, इत्यादि योगसिद्धियों के लिये व
अवधि में श्वसन-क्रिया करनी चाहिये। क्रिया करते समय सर्व
दीर्घ श्वास-प्रश्वास लेना चाहिये, और मानसिक वृत्तियां अभीष्ट
सिद्धि के लक्ष्य स्थान पर एकाग्र रखनी चाहियें।

उपर्युक्त चारों तत्वों की राशियों में श्वसन-क्रिया तो एक ह
प्रकार से करनी पड़ती है; परन्तु मानसिक वृत्तियों के एकाग्र करने
का लक्ष्य-स्थान अलग अलग होता है। इसके सिवाय जिन जिन
राशियों में जो प्राणवायु फेफड़े में ग्रहण की जाती है, उस वायु
के वर्ण में, उन उन राशियों के वर्णानुसार, भेद रहता है। इसी
भेद के कारण उनके भिन्न भिन्न फल भी प्राप्त होते हैं।

इक्कीसवां अध्याय

विद्युत्-शक्ति के द्वारा बलवृद्धि का प्राणायाम

इस प्राणायाम को योगी लोग "भस्त्रिका" प्राणायाम भी कहते हैं। यह प्राणायाम यदि यथाविधि किया जावे, तो मनुष्य-शरीर के सब्बे फो सदो रोग दूर हो सकते हैं; और वह एक अपूर्व आरोग्य और शक्ति का अनुभव कर सकता है। यह एक साधारण सा श्वास-व्यायाम है, जिससे शरीर में विद्युत्शक्ति और मानसिक बल का आविर्भाव होता है।

मनुष्य-शरीर में विद्युत् ही जीवन है। वायु में रहनेवाली 'अदृश्य शक्ति' एक अच्छे परिमाण में इस किया के द्वारा मनुष्य-शरीर में प्रवेश करती है। ऐसी अद्भुत और आश्चर्यजनक शक्ति सैकड़ों प्रकार की कीमती दवाइयां और मात्राएं खाने से भी उत्पन्न नहीं हो सकती। इस प्राणायाम से निम्नलिखित लाभ होते हैं:—

१—ज्ञानतंतुओं की निर्बलता और उससे सम्बन्ध रखनेवाले सभी रोगों को यह क्रिया शीघ्र ही दूर कर देती है।

२—प्रत्येक प्रकार की पीड़ा, दुःख और वेदनाएं कुछ ही क्षणों में इस क्रिया से दूर हो जाती हैं।

३—सिर-दर्द और हृदय की धड़कन के लिये यह रामबाण उपाय है।

४—फेफड़ा, जठर, यकृत, हृदय, इत्यादि मुख्य इ अवयवों को यह क्रिया बलवान और आरोग्य दशा रखती है।

५—प्रत्येक प्रकार के रोग में यह आश्चर्यजनक प्रदर्शित करती है।

६—इस क्रिया से शारीरिक व्यापारों पर कितना अंकु होता है, इसके लिये एक ही उदाहरण बस है। यदि की गति प्रति मिनट १५० धड़कनों पर पहुँच गयी हो मनुष्य एकदम गिर जाने की दशा में हो, तो उस समय केव मिनट तक यदि यह क्रिया की जावे तो नाड़ीचक्र नियमित प्रतिमिनट ७२-७५ धड़कनों की गति पर आ जाता है।

७—इस क्रिया से ज्ञानतंतु और मस्तिष्क की शक्ति परिमाण में बढ़ती है। यह क्रिया नूतन रीति से शा संगठन करके उसे दृढ़ बनाती है। यह रुधिर शुद्ध क अद्वितीय और पुष्टता के लिए महान् पौष्टिक दवाई है।

८—यह क्रिया नाश हुई आरोग्यता का पुनः आविर्भा उसे स्थिर रखती है और मानसिक प्रसन्नता के साथ ही रुधिर की गति में समता लाकर फेफड़े और हृदय को ब बनाती है। इससे छाती भी चौड़ी होती है। यह क्रिया जठर अन्य अवयवों में स्फूर्ति उत्पन्न करके शरीर में स्थायी शक्ति चाती है। स्वर सुधारनेवाले गायकों के लिये भी यह क्रिया अ फल देनेवाली है। इस क्रिया के यथाविधि अभ्यास से स्वर म

सरल और कर्णप्रिय होता है। इस यौगिक क्रिया से स्वर वशीभूत करनेवाला सौंदर्य्य और कोमलता होती है।

बैठे कार्य करनेवाले लोगों के लिये इस क्रिया की बहुत आवश्यकता है। शक्तिपूर्वक की जानेवाली कसरतों में अनेक घंटे व्यतीत कर देने पर जो लाभ नहीं होता है, वही लाभ केवल पन्द्रह मिनट इस क्रिया में व्यतीत करने से हो सकता है।

१०—यह क्रिया अत्यन्त सरल है। वृद्ध, युवा, रोगी, निरोगी सब कोई सरलतापूर्वक कर सकते हैं। शारीरशास्त्र के नियमों पर इस क्रिया का अस्तित्व है। इससे ऊपर लिखे लाभ इस क्रिया से अवश्य ही होते हैं।

११—कुछ समय तक धैर्य्यपूर्वक अभ्यास के बाद इस क्रिया से शरीर के रोम रोम में नूतन बल का संचार हो जाता है। किसी सुन्दर गायन के सुनते समय शरीर में आनन्दातिरेक से जैसा अनुभव होता है वैसा ही, या उसके समान ही, आनन्द इस क्रिया के अन्त में मालूम होता है।

१२—इससे उद्वेग की निवृत्ति, प्रसन्नता की वृद्धि और साहस का आविर्भाव होता है। किसी कारण से जब मनुष्य का मन खिन्न हो जाता है, तब इस क्रिया से वह खिन्नता बहुत शीघ्र दूर हो जाती है।

१३—विद्यार्थियों, शिक्षकों, वकीलों, लेखकों इत्यादि मानसिक

भरना चाहिये। भरते समय बीच में रुकना न चाहिए—श
उदर और फेफड़ों में क्रमशः वायु भरते समय बीच में रु
वायु का प्रवाह खंडित न कर देना चाहिए।

प्रारम्भ में कुछ मिनटों तक सिर चकराता सा मालूम
है; परन्तु ऐसा होने का कारण यह है कि उस समय शुद्ध
के साथ अशुद्ध रक्त का संयोग होता है; और वायु में रहने
जीवनतत्व रक्त में रहनेवाले विष को जलाता है,जिससे कार्बो
एसिड् गैस उत्पन्न होती है; और इसी गैस से हृदय में घबर
और मस्तिष्क में चक्कर मालूम होता है।

दस मिनट या इससे कुछ ही अधिक समय तक क्रिया
रहने से हाथ-पैर और शरीर के अन्य भागों में एक प्रकार
झनझनाहट मालूम होती है। ऐसी झनझनाहट होते स
समझना चाहिये कि क्रिया के प्रभाव से शरीर के रक्त में परिव
हो रहा है। ऐसी झनझनाहट मालूम हो जाने के पश्चात्
पांच-सात मिनिट तक यह क्रिया और करते रहना चाहिये।
कुछ क्षणों तक शांतिपूर्वक शिथिल होकर पड़े रहना चाहि
इस क्रिया से मनुष्य के शरीर में विद्युन्मय तत्व भर जा
ज्ञान-तंतु-व्यूह व्यवस्थित हो जाते हैं; और सारा शरीर
तत्व-मय हो जाता है।

यह क्रिया खास शुद्ध हवा के स्थानों में करनी चाहिये।
में,नदी के किनारे, बगमदे में, और खुले कमरों में, जहां शुद्ध ह
का खूब आवागमन हो, वहीं इसका अभ्यास करना चाहि

बाईसवां अध्याय

प्राणायाम से जीवन-संग्राम में विजय कैसे प्राप्त होता है ?

वास्तविक श्वसन-क्रिया जिस प्रकार आरोग्यता का मुख्य हेतु है उसी प्रकार जीवन-संग्राम में विजय-प्राप्ति का मुख्य आधार भी उसी पर है।

इच्छित वस्तु को अपनी ओर आकर्षित करने की जितनी शक्ति आप में होगी, उतनी ही सफलता भी आप को मिलेगी। यह शक्ति मनुष्य-शरीर के अन्दर रहनेवाले विद्युन्मय सामर्थ्य (Personal magnetism) के ऊपर आधार रखती है। इस अटल नियम के कारण आरोग्य-विहीन मनुष्यों के अन्दर प्रबल विद्युन्मय शक्ति कदाचित् ही दिखलाई पड़ती है। और इसी कारण वे बार बार प्रत्येक कार्य में असफल होते हैं।

मानसिक सकल्पों के साथ, ऋतुओं के अनुकूल, वास्तविक रीति से श्वसन-क्रिया की जावे, तो उसके सामर्थ्य से मनुष्य के अन्दर अनेक पदार्थों को आकर्षित करने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। इस अद्वितीय और अपूर्व शक्ति के उत्पन्न हो जाने पर मनुष्य इस विश्व-वैभव में से अपने लिये आवश्यक पदार्थों को अधिकार-पूर्वक आकर्षित कर सकता है।

अपने नाम से खूब रुपये जमा करना ही नहीं है; किन्तु वर्तमान काल के लिये, और इसके पश्चात् जीवन भर के लिये, सब प्रकार की आवश्यक वस्तुएं प्राप्त हो जायें, बस इतना ही इसका अर्थ है। शरीर-रक्षा और सुख के लिये भोजन के पदार्थ, वस्त्र तथा घर, ये आवश्यक वस्तुएं गिनी जाती हैं। इसी प्रकार मानसिक सुख और विकास के लिये तथा आत्मानन्द के लिये जिन जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है, वे सभी वस्तुएं आवश्यक गिनी जाती हैं। ये सब आवश्यक वस्तुएं योग्य श्वसन-क्रिया और उपर्युक्त मानसिक चिन्तन से अवश्य मिलती हैं।

मनुष्य को चाहिए कि वह अपने को धन का प्रवाह बहानेवाली एक प्रणालिका (channel) समझे। धन को अपने अन्दर होकर पूर्ण स्वतंत्रता से बहने देना चाहिए। कल क्या खाऊँगा, इस भय से उस प्रवाह को रोकनेवाली दीवाल बीच में न खड़ी कर देनी चाहिये। जिस स्वतंत्रता से तुम उस धन को अपने अन्दर आकर्षित कर रहे हो, उसी स्वतंत्रता से उसे बाहर भी जाने दो। तुम्हारी अन्तरात्मा जिस कार्य में धन खर्च करना योग्य समझे, उसमें एकदम, संकोच-रहित होकर, प्रेम से खर्च करो।

विधि

विजय प्रदान करनेवाली श्वसन-क्रिया करने के लिये किसी एकान्त स्थान में जाना चाहिये। खुले मैदान में, चांदनी में, या आकाश दृष्टिगोचर हो—ऐसी जगह, पद्मासन अथवा अन्य किसी ...सन से सीधे तनकर बैठना चाहिये। सब शारीरिक अवयवों

ा व्यापार बन्द करके दीर्घ श्वास-प्रश्वास लो; और साथ ही रम पांच मिनट तक ऐसी भावना करो कि ब्रह्मांड में व्याप्त रमात्मा के साथ तुम्हारा अभेद है। "मैं स्वयं सूर्य्यरूप हूँ। रे अन्दर से प्रेम की किरणें निकलकर चारों ओर समस्त श्व में फैल रही हैं।" ऐसी कल्पना करो। इस कल्पना के समय न विधि-वाक्यों का मानसिक उच्चारण करो—"मैं प्रेमस्वरूप , और प्रेम ही ब्रह्माण्ड में एक महान् आकर्षक बल है। प्रेम के ारा मैं अपने इच्छानुसार सभी पदार्थों को आकर्षित कर सकता ।" इसके बाद के पांच मिनटों में, तुम्हारी जो कुछ इच्छाएं ं, उनकी कल्पना का एक सुन्दर चित्र दृष्टि-पथ में कल्पित रके देखो।

यदि तुम कपड़े के व्यापारी हो; और तुम्हारी इच्छा है कि म्हारा माल खूब खपता रहे, तो ऐसी कल्पना करो कि "ग्राहकों ं समूह के समूह प्रातःकाल से सायंकाल तक तुम्हारी दूकान र आते हैं और बहुतसा कपड़ा खरीद ले जाते हैं—"

यदि तुम किसी मासिक पत्र के सम्पादक या प्रकाशक हो तो सी कल्पना करो कि "प्रतिदिन दो सौ, चार सौ पत्र, ग्राहक ोने के लिये, तुम्हारी ओर आ रहे हैं—"

प्रत्येक अवस्था में यह याद रखना चाहिये कि आमदनी का ार जितना बड़ा होता जाये, खर्च का द्वार भी उतना ही विशाल रते रहना चाहिये। जिस स्वतंत्रता से तुम्हारी ओर द्रव्य बहता आ चला आ रहा है, उसी स्वतंत्रता से निराश्रितों और दीन-

अपने नाम से खूब रुपये जमा करना ही नहीं है; किन्तु वर्तमान काल के लिये, और इसके पश्चात् जीवन भर के लिये, सब प्रकार की आवश्यक वस्तुएं प्राप्त हो जायें, बस इतना ही इसका अर्थ है। शरीर-रक्षा और सुख के लिये भोजन के पदार्थ, वस्त्र तथा घर, ये आवश्यक वस्तुएं गिनी जाती हैं। इसी प्रकार मानसिक सुख और विकास के लिये तथा आत्मानन्द के लिये जिन जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है, वे सभी वस्तुएं आवश्यक गिनी जाती हैं। ये सब आवश्यक वस्तुएं योग्य श्वसन-क्रिया और उपर्युक्त मानसिक चिन्तन से अवश्य मिलती हैं।

मनुष्य को चाहिए कि वह अपने को धन का प्रवाह बहानेवाली एक प्रणालिका (channel) समझे। धन को अपने अन्दर होकर पूर्ण स्वतंत्रता से बहने देना चाहिए। कल क्या खाऊँगा, इस भय से उस प्रवाह को रोकनेवाली दीवाल बीच में न खड़ी कर देनी चाहिये। जिस स्वतंत्रता से तुम उस धन को अपने अन्दर आकर्षित कर रहे हो, उसी स्वतंत्रता से उसे बाहर भी जाने दो। तुम्हारी अन्तरात्मा जिस कार्य में धन खर्च करना योग्य समझे, उसमें एकदम, संकोच-रहित होकर, प्रेम से खर्च करो।

विधि

विजय प्रदान करनेवाली श्वसन-क्रिया करने के लिये किसी एकान्त स्थान में जाना चाहिये। खुले मैदान में, चांदनी में, या आकाश दृष्टिगोचर हो—ऐसी जगह, पद्मासन अथवा अन्य सुखासन से सीधे तनकर बैठना चाहिये। सब

घंटे तक भी की जा सकती है। पन्द्रह मिनट सुबह और पन्द्रह मिनट शाम को कर लेने से बहुत लाभ होता है। इस क्रिया के करने का उपयुक्त समय इस प्रकार है:—

२० जनवरी के १९ फरवरी तक; २१ मार्च से १९ अप्रैल तक; २२ मई से २१ जून तक; २२ जुलाई से २२ अगस्त तक २३ सितम्बर से २२ अक्टूबर तक, २२ नवम्बर से २१ दिसम्बर तक।

"विजय" के ऊपर मानसिक वृत्तियां एकाग्र करने का कार्य्य यदि कठिन प्रतीत होता हो, तो कल्पनाशक्ति की सहायता लेना चाहिये। जैसे किसी भयंकर जङ्गल के शून्य मैदान में कोई वृक्ष अकेला उगा हो, और अपने पोषण के लिये आसपास की जमीन में अपनी जड़ों को बड़े विस्तार के साथ जमा रहा हो—बस, इसी प्रकार अपनी दशा को भी कल्पित करो। तुम्हारे आसपास भी उसी वृक्ष के समान हवा, धूप, और प्रकाश फैल रहे हैं। तुम्हारी इच्छाएँ तुम्हारी जड़ें हैं; और वे यदि उचित रीति से प्रेरित की जावें तो जिस प्रकार वृक्ष की जड़ों के लिये पृथ्वी में अटूट जल भरा हुआ है, उसी प्रकार तुम्हारी आवश्यकता से भी अधिक गुण और सम्पत्ति इस विश्व में भरी हुई है। वृक्ष उगने के साथ ही भारी और प्रतापी नहीं हो गया। प्रारम्भ में जब वह बीज के रूप में था, उसके सामने अपने कर्त्तव्य का कर्मक्षेत्र बहुत बड़े में विद्यमान था। उस कर्मक्षेत्र के मैदान में उसे अनेक सहन करने पड़े। उसके छोटे से अंकुर को अन्धकारपूर्ण भूमि

बाहर निकलना पड़ा और सूर्य्य के प्रकाश का दर्शन करते समय मिट्टी के अभेद्य पट को हटाना पड़ा। इस कार्य में उसे अपनी बहुत कुछ शक्ति का उपयोग करना पड़ा। फल की प्राप्ति ऐसे ही साहसपूर्ण कार्यों से होती है। इस लिये तुम्हें अपने समस्त संशयों को दूर फेंक देना चाहिये। प्रारंभ में तुम्हें तत्काल ही अपनी इच्छा फलीभूत होती हुई नहीं दिखलायी पड़ेगी, तथापि छोटे से बीज की विपत्तियों का स्मरण कर, और विजयरूपी सूर्य का प्रकाश सिर पर है—ऐसी दृढ़ श्रद्धा रखकर तुम्हें भी उसी के समान अन्धकार में प्रयत्न करते रहना चाहिये। प्रत्येक श्वास के समय "हमारी इच्छित वस्तु विश्व में से आकर्षित होकर हमारी ओर आ रही है"—ऐसी भावना प्रतिक्षण करते रहना चाहिये। इसी प्रकार श्वास को भीतर रोकते समय यह भावना रखो कि आकर्षित की हुई वस्तु का तुम उपभोग कर रहे हो। इसी भाँति प्रश्वास के समय तुम ऐसा विचार रखो कि जिन वस्तुओं की तुम्हें तात्कालिक आवश्यकता नहीं है, उन्हें तुम, स्वेच्छापूर्वक, प्रसन्नता से, विश्व में फेंक रहे हो और उससे संसार का उपकार कर रहे हो। श्वास ग्रहण करते समय, जिस प्रकार तुम्हें पूर्ण रूप से विश्वास है कि वातावरण में आच्छादित वायु अवश्य ही मेरे फेफड़ों में आवेगी, उसी प्रकार विश्व के भांडार में अपनी इच्छाएँ प्रेरित करते समय ऐसा दृढ़ विश्वास रखो कि हमारी अभीष्ट वस्तु अवश्य ही हमारी ओर आकर्षित होकर हमारे पास आवेगी।

तेईसवां अध्याय

पंचप्राणों पर विजय प्राप्त करानेवाले पाँच प्राणायाम

प्राणशक्ति वास्तव में भगवान् ने एक ही बनाई है। तथापि शरीर के अन्दर उसके कार्य-भेद से पांच प्राण माने गये हैं। प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान।

१-प्राण-जो वायु मुख और नासिका से लेकर हृदय तक शरीर का व्यापार चलाता है, उसको प्राणवायु कहते हैं। इसका मुख्य कार्य फेफड़ों में रक्तशुद्धि करना है।

२-अपान-यह वायु नाभि से लेकर नीचे पैरों के तलवों तक सञ्चार करके शरीर का व्यापार चलाता है। मलमूत्र-विसर्जन और स्त्रियों में गर्भ को भी नीचे यही सरकाता है।

३-समान-यह वायु हृदय के नीचे नाभि तक सञ्चार करके नाड़ियों को, उनके आवश्यकतानुसार, रस पहुँचाता है।

४-उदान-यह वायु कंठ से लेकर ऊपर मस्तक तक सञ्चार करके मस्तिष्क में रस पहुँचाता है। शरीर से प्राणोत्क्रमण भी इसी के द्वारा होता है।

५-व्यान-यह वायु सारे शरीर में सञ्चार किया करता है

और शरीर के सब स्नायुओं, सन्धियों और अन्यान्य अवयवों को गति देता है।

उपर्युक्त पांचों प्राणों में से यदि एक प्राण को भी मनुष्य अच्छी तरह वश में कर ले, तो अन्य प्राणों पर प्रभाव जम जाता है। जैसे एक पिता के पांच पुत्र हों और वह पिता यदि एक को भी डांट देता है, तो दूसरों पर आप ही आप आतङ्क जम जाता है। परन्तु हां, एक को भी वश में करने के लिए काफी प्रभाव और दृढ़ प्रयत्न की आवश्यकता है। प्राणों को वश में करना कोई हँसी-ठट्ठा नहीं है। फिर भी मनुष्य को ईश्वर ने जो विचित्र शक्तियां दी हैं, उनके सामने कुछ भी असम्भव नहीं है। प्रयत्न और अभ्यास से सभी काम सिद्ध हो जाते हैं।

१–प्राणवायु पर विजय

(१) सीधी सरल रेखा में स्वाभाविक रूप से खड़े हो जाओ। शरीर बहुत कड़ा न करो। हाथ स्वाभाविक रूप से नीचे छोड़ दो।

(२) मुँह बन्द करके, सुखपूर्वक यथाशक्ति नासिका के दोनों छिद्रों से वायु की धारा धीरे धीरे खींचते हुए पूरक करो। इतने धीरे धीरे हवा को फेफड़ों में भरो कि आवाज बिलकुल न होने पावे। वायुधारा खींचते समय छाती को फुलाते जाओ। शरीर किसी प्रकार झुकने अथवा टेढ़ा होने न पावे। दृष्टि नीचे की ओर अथवा नासिका के अग्रभाग पर रहे। ऊपर की ओर दृष्टि फेंकने से चक्कर आने की सम्भावना रहती है।

(३) इसके बाद यथाशक्ति वायु को भीतर रोककर कुम्भक साधो।

चित्र नं० १८

(४) फिर कुछ ठहरकर ओष्ठद्वय (होठों) को कुछ खुला रख कर वायुधारा को धीरे धीरे बाहर निकालते हुए रेचक करो। रेचक के बाद फिर वायु को विशेष रूप से ग्रहण करने

१४

की इच्छा न होनी चाहिये। यह ध्यान में रक्खो। साधना इस
का नाम है।

इस प्रकार सुबह-शाम, कोमल धूप में प्रत्येक बार तीन से
पाँच तक पूरक, कुम्भक और रेचक करना चाहिए।

२—अपान-वायु पर विजय

(१) गांठों पर दोनों हाथ रखकर, नीचे झुककर खड़े हो
जाओ। दृष्टि भी नीचे ही की ओर रहे। अब पूरक करने का
प्रारम्भ करो। (देखो पृष्ठ २११)

(२) पूरक के बाद गुदा और पेड़ू को यथाशक्ति भीतर
की ओर खींचते हुए कुम्भक करो।

(३) फिर पेट को जरा धक्का सा देकर रेचक करो।

(४) रेचक के बाद फिर सीधे खड़े हो जाओ और फिर उप-
र्युक्त प्रकार से झुककर पूरक, कुम्भक और रेचक करो।

इस प्रकार तीन से पांच बार तक यही प्राणायाम करते रहो।
इस प्राणायाम से पेशाब में धातु जाना, स्वप्नदोष इत्यादि प्रमेह के
[illegible]
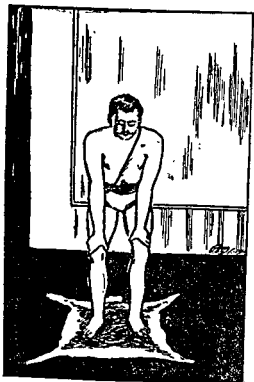
चित्र नं० ११

३—समान-वायु पर विजय

(१) सीधे खड़े हो जाओ। धीरे धीरे वायुधारा खींचकर पूरक करो। (देखो पृष्ठ २१३)

(२) पूरक पूर्ण हो जाने पर छाती को फुलाओ। अब एक सेकंड वायु को स्थिर करो। फिर छाती को जरा ऊपर तानकर पेट को अन्दर खींचो। यहां तक कि दोनों बाजू लूब तन जावें; और पेट बिलकुल पीठ से जा मिले। अब यथाशक्ति कुम्भक साधो।

(३) फिर पेट को जरा सा धक्का सा देकर धीरे धीरे रेचक करो।

इसी प्रकार तीन से पांच बार तक प्राणायाम करो। यह समान-वायु पर विजय प्राप्त करने का प्राणायाम बहुत ही महत्व-पूर्ण है। जठराग्नि के आसपास समान-वायु का गोलाकार वेष्टन रहता है। इसलिए योगी लोग जब समानवायु पर विजय प्राप्त कर लेते हैं तब भीतर अग्नि के ऊपर का आवरण हट जाता है; और उसकी ज्वालाएं ऊपर की ओर लपकती हैं। इससे योगी का तेज अग्नि की तरह दिखाई देने लगता है। यह सामर्थ्य प्राप्त हो जाने पर योगी अपनी दृष्टि-मात्र से चाहे जिसको भस्म कर सकता है।

चित्र नं० १०
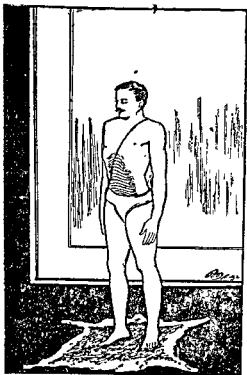
४–उदानवायु पर विजय

(१) सीधे अकड़कर खड़े हो जाओ और पूर्वोक्त रीति से पूरक करो।

(२) इसके बाद कुम्भक करके दोनों हाथों के पंजों से गले को चारों ओर से पकड़ो, और भीतर से वायु का कुम्भक करके, बाहर के पाश का प्रतीकार करते हुए, गर्दन को खूब फुलाओ; और गले के बीचों-बीच के ऊपर का भाग दोनों अँगूठों से दबाओ। (देखो पृष्ठ २१५)

(३) फिर दाब को ढीला कर के रेचक करो।

उदान-वायु कण्ठस्थान में रहती है। अतएव इस प्राणायाम में कण्ठ ही पर जोर दिया जाता है। अभ्यासी को धीरे धीरे कण्ठ की फांसी का यह प्राणायाम साधना चाहिये। कहते हैं कि इस प्राणायाम के पूर्ण सिद्ध हो जाने पर मनुष्य फांसी की डोरी को भी, गर्दन कड़ी करके, तोड़ सकता है। फांसी के द्वारा उसके प्राण नहीं जा सकते। इसी प्राणायाम के द्वारा महायोगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ने कालिया नाग के पाश को अपने शरीर से दूर किया था। उदानवायु के विजय से जब भगवान् ने कालिया नाग के समान सजीव बन्ध को तोड़ डाला, तब फांसी की निर्जीव डोरी टूट जाने में सन्देह ही क्या है! योगी लोग इसी प्राणायाम के योग से मृत्यु को टाल देते हैं। राजर्षि भीष्म पितामह ने इसी प्राणायाम के बल पर मृत्यु पर विजय प्राप्त किया था।

चित्र नं० ११

५—व्यानवायु पर विजय

व्यानवायु सारे शरीर के पट्ठे पट्ठे, रग रग और प्रत्येक

चित्र नं० २२

सन्धि सन्धि में सञ्चार किया करती है। अतएव पूरक करके कुम्भक के द्वारा, शरीर का कोई भी भाग, उसी समय भर के लिए, इतना सुदृढ़ और कठोर किया जा सकता है कि उस भाग पर कोई भी भारी से भारी आघात कुछ भी असर नहीं कर सकता। कुम्भक के द्वारा शरीर का कोई भी अङ्ग कड़ा करके आप खड़े हो जाइये, फिर उस अङ्ग पर चाहे कोई बड़ा से बड़ा पहलवान कितने ही रद्दे लगावे; पर आप को कुछ भी मालूम नहीं होगा। छाती या पेट पर से भरी हुई गाड़ी निकालना, कड़ी जंजीर तोड़ना, इत्यादि कार्य इसी प्राणायाम के जोर पर किये जाते हैं।

पञ्चप्राणों को वश में करने के लिये उपर्युक्त क्रमानुसार आरम्भ में एक एक प्राणायाम का प्रारम्भ करके, फिर प्रत्येक सप्ताह में एक एक प्राणायाम को बढ़ाते जाना चाहिये। प्रत्येक प्राणायाम की क्रिया पांच पांच बार करनी चाहिये। अर्थात् पहले सप्ताह में यदि प्राणवायु पर विजय प्राप्त करने का प्राणायाम किया जाय, तो दूसरे सप्ताह में पहला प्राणायाम तो किया ही जाय, उसके साथ ही दूसरा भी शुरू कर दिया जाय। फिर तीसरे सप्ताह में पहले के दोनों के साथ तीसरा भी जारी किया जाय। इसी प्रकार पिछले जारी रखते हुए क्रमशः एक एक सप्ताह बाद अगले प्राणायामों को भी सम्मिलित करते जाना चाहिये। इस प्रकार पांच सप्ताह के बाद पांचों प्राणायाम साथ साथ होने लगेंगे।